CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2
B-1

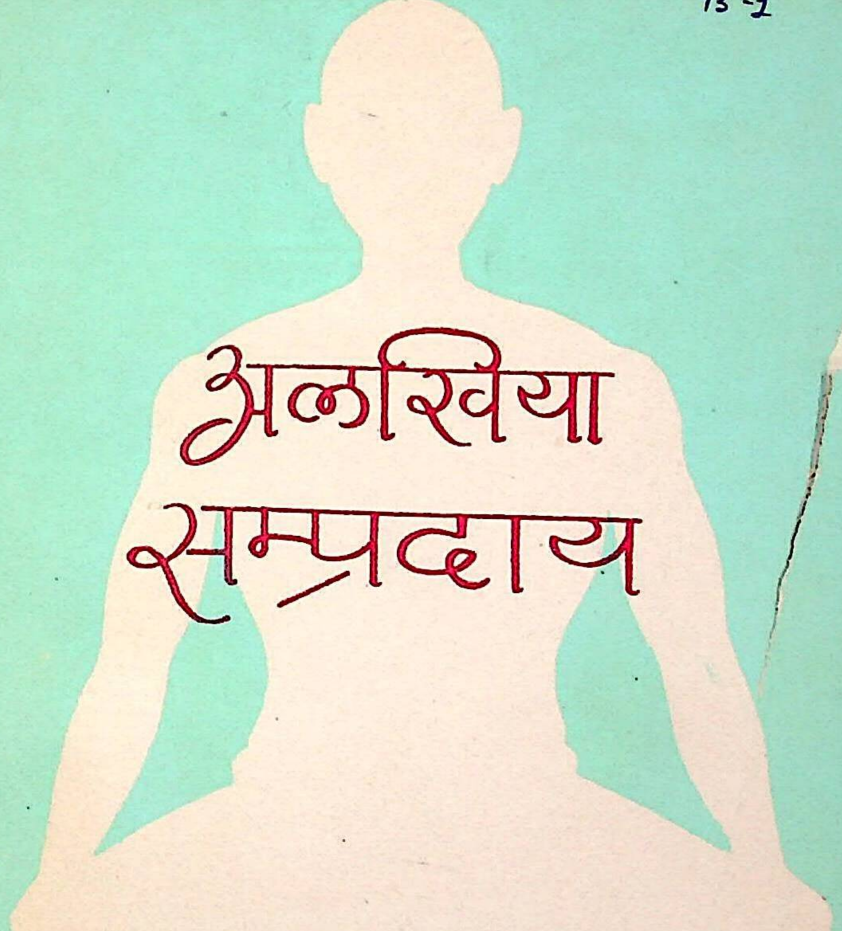

अलखिया सम्प्रदाय

चन्द्रदान चारण

भारतीय विद्या मन्दिर शोध प्रतिष्ठान
बीकानेर (राजस्थान)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संत लालगिरिजी द्वारा प्रवर्तित

अलखिया सम्प्रदाय

चन्द्रदान चारण

एम० ए०, साहित्यरत्न

भारतीय विद्या मन्दिर शोध प्रतिष्ठान

बीकानेर (राजस्थान)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारतीय विद्या मन्दिर ग्रन्थमाला–२

परामर्श मण्डल

- श्री नरोत्तमदास स्वामी
- श्री शम्भूदयाल सकसेना
- श्री नाथूराम खड़गावत
- श्री चन्द्रदान चारण
- श्री अक्षयचन्द्र शर्मा
- श्री रामेश्वरप्रसाद पांडिया
- श्री पन्नालाल बारूपाल एम० पी०

प्रकाशक : भारतीय विद्या मन्दिर शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर

प्रथम संस्करण : भा० सं० १८८६ [सन् १९६४ ई०]

मुद्रक : एजूकेशनल प्रेस, बीकानेर

मूल्य : दो रुपये पचास पैसे

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

संत-परम्परा और ईश्वर-भक्ति की
लोरियों में पले
भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री
राष्ट्रपुरुष श्री जगजीवनरामजी
को—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आभार

भारतीय विद्यामंदिर ग्रन्थमाला का द्वितीय पुष्प 'अलखिया सम्प्रदाय' साहित्य संसार के समक्ष प्रस्तुत है। 'शोध प्रतिष्ठान' के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री अक्षयचन्द्रजी शर्मा एम० ए०, साहित्य-रत्न के निर्देशन व मार्गदर्शन में संग्रहीत सामग्री का सुसम्पादन श्री चन्द्रदान जी चारण एम० ए०, साहित्यरत्न ने परिश्रमपूर्वक किया है। आशा है कि संस्था द्वारा प्रकाशित अन्य ग्रन्थों की तरह इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ को भी सर्वत्र पसन्द किया जायेगा।

हम श्री जगजीवन सर्वोदय आश्रम ट्रस्ट, श्री कोलायत (बीकानेर) एवं उसके अध्यक्ष श्री पन्नालाल बारूपाल, संसद सदस्य के अत्यधिक आभारी हैं कि उन्होंने इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु संस्था को सहर्ष आवश्यक धन की सहायता प्रदान की। श्री जगजीवन सर्वोदय आश्रम ट्रस्ट का एक उद्देश्य यह भी है कि ऐसे साहित्य को प्रकाश में लाया जाय जिससे सामाजिक भेद-भाव दूर होकर हमारे समाज और राष्ट्र को निर्माण की नयी दिशा प्राप्त हो। आशा है कि यह ग्रन्थ इस उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होगा।

मूलचन्द पारीक
रजिस्ट्रार

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आमुख

श्री लालगिरिजी उन्नीसवीं शताब्दी की निर्गुण काव्यधारा के अन्तिम संत-कवि थे। अब तक साहित्य-जगत में संत तुलसी साहब इस शताब्दी के अन्तिम निर्गुण कवि माने जाते रहे हैं। पर, 'अलखिया सम्प्रदाय' के प्रवर्तक लालगिरिजी के जीवन और वाणी पर 'प्रतिष्ठान' द्वारा जो यह तात्त्विक शोध अध्ययन संत साहित्य के विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है, उससे तुलसी साहब से भी आगे निर्गुण काव्य-धारा के प्रवाहित रहने का पुष्ट प्रमाण मिलता है।

तात्त्विक शोध की वतमान समस्या जो एक चुनौती के रूप में अध्येताओं के समक्ष उपस्थित है, उस के समाधान की दिशा में भी यह अध्ययन बड़ा उपादेय सिद्ध होगा। सन् २९ में संत-आचार्य श्री क्षितिमोहन सेन ने अपने ग्रन्थ "मेडीवल मिस्टिसिज्म ऑफ इन्डिया" में 'लालवेग' अथवा 'अलखगिर' संत परम्परा का उल्लेख किया था। बाद में श्री परशुराम चतुर्वेदी भी अपने ग्रंथ "उत्तरी भारत की संत परम्परा" में आचार्यजी द्वारा दी गई जानकारी से आगे, इस सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी नहीं दे पाए हैं। इस तरह एक अल्पज्ञात प्रमुख संत के सम्बन्ध में पहली बार शोधपरक सामग्री—जीवन और कृतित्व के सर्वांगीण अध्ययन के रूप में प्रकाशित कर 'प्रतिष्ठान' ने एक लम्बे अभाव की पूर्ति की है। तात्त्विक शोध अध्ययन की दृष्टि से इस प्रकार के अध्ययन अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इससे एक बात और भी पुष्ट होती है कि अभी हिन्दी साहित्य में, और विशेषकर संत साहित्य के क्षेत्र में तात्त्विक शोध अध्ययन की दृष्टि से काफी सामग्री और गुंजाइश है।

श्री लालगिरि एक क्रान्तदर्शी सन्त थे। समाज में व्याप्त कुरीतियों, वाह्याडम्बरों और भैंरू-भोपा, बायाँ-मायाँ के अन्धविश्वासों के प्रति उन्होंने करारी चोट की है। उनकी वाणी में कबीर का रहस्य, गोरख का योग, रामानन्द की भक्ति और सूफीमत की प्रेममयी मस्ती है। संत गा उठता है:—

'हुए मतवाले पीकर प्याले, अरस परस कर जानी।'

'भारतीय विद्या मंदिर शोध प्रतिष्ठान' संत साहित्य और लोक साहित्य के क्षेत्र में बिखरी पड़ी रत्न-मणियों को एकत्रित कर विद्वानों तथा अपने शोध सहायकों द्वारा शोधपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत करने की दिशा में शुरू से ही जागरूक रहा है। इसी दृष्टि से "भारतीय विद्या मंदिर ग्रन्थमाला" के अन्तर्गत चार ग्रन्थ-पुष्प साहित्य जगत के अवलोकनार्थ प्रस्तुत किये जा चुके हैं। आशा है, विद्वद्जन इस कृति का भी पहले की तरह ही पूर्ण समादर करेंगे।

सत्यनारायण पारीक
अध्यक्ष

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दो शब्द

'अलखिया सम्प्रदाय' मेरी दूसरी कृति है । इससे पूर्व 'गोगाजी चौहान री राजस्थानी गाथा' विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत कर चुका हूं । इन दोनों ही ग्रन्थों के तैयार करने में मुझे श्रद्धेय गुरुवर श्री अक्षयचन्द्रजी शर्मा से काफी प्रेरणा और निर्देश प्राप्त हुए । 'अलखिया सम्प्रदाय' के बारे में तो सारा कार्य उन्हीं के मार्गदर्शन से हुआ । इनके अतिरिक्त श्री सत्यनारायणजी पारीक, ठा० शिवदानसिंहजी, स्वर्गीय ठा० खेतसिंहजी, स्वर्गीय सेठ रामगोपालजी मोहता, साधु योगानन्दजी महाराज, श्री सूर्यशंकरजी पारीक, श्री मूलचन्दजी 'प्राणेश' आदि ने भी विषय से सम्बन्धित सामग्री जुटाने में योग दिया । इसके लिये मैं इन सबका आभारी हूं ।

प्रस्तुत ग्रन्थ में अलखिया सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री लालगिरिजी की वाणी भी दी गई है । सम्प्रदाय की अन्य प्राप्त सामग्री में श्री ज्ञानगिरिजी कृत 'अलख स्तुति प्रकाश' (अलख महिमा स्तुति) तथा फुटकर रचनाएं 'शोध प्रतिष्ठान' में सुरक्षित हैं । आशा है अन्य शोध अध्येता उसका उपयोग कर लाभान्वित होंगे ।

आज हमारा समाज और राष्ट्र जीवन के जिन नए मूल्यों के निर्माण में रत है उनमें लालगिरिजी की वाणी काफी सहायक हो सकती है; क्योंकि इसमें उस शाश्वत मानव सत्य की अभिव्यक्ति है जो कभी पुराना नहीं पड़ता । आज हम सब प्रकार के भेदभाव को मिटाकर ही ऐसे समाज की स्थापना कर सकते हैं, जो राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के राम-राज्य से मेल खाता हो । यदि 'अलखिया सम्प्रदाय' से इस दिशा में कुछ भी योग मिला तो मैं अपने श्रम को सफल समझूंगा ।

चन्द्रदान चारण

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुक्रम

खण्ड १

१. अवतारवाद और निर्गुण भावना ... ३

२. लालगिरिजी की जीवनी ... २४

३. अलखिया सम्प्रदाय ... २६

खण्ड २

१. लालगिरिजी की वाणी ... ३६

२. वाणी के शब्दार्थ ... ५२

परिशिष्ट

अलखसागर कुए का शिलालेख ... ५५

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अलखिया सम्प्रदाय

खण्ड १

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

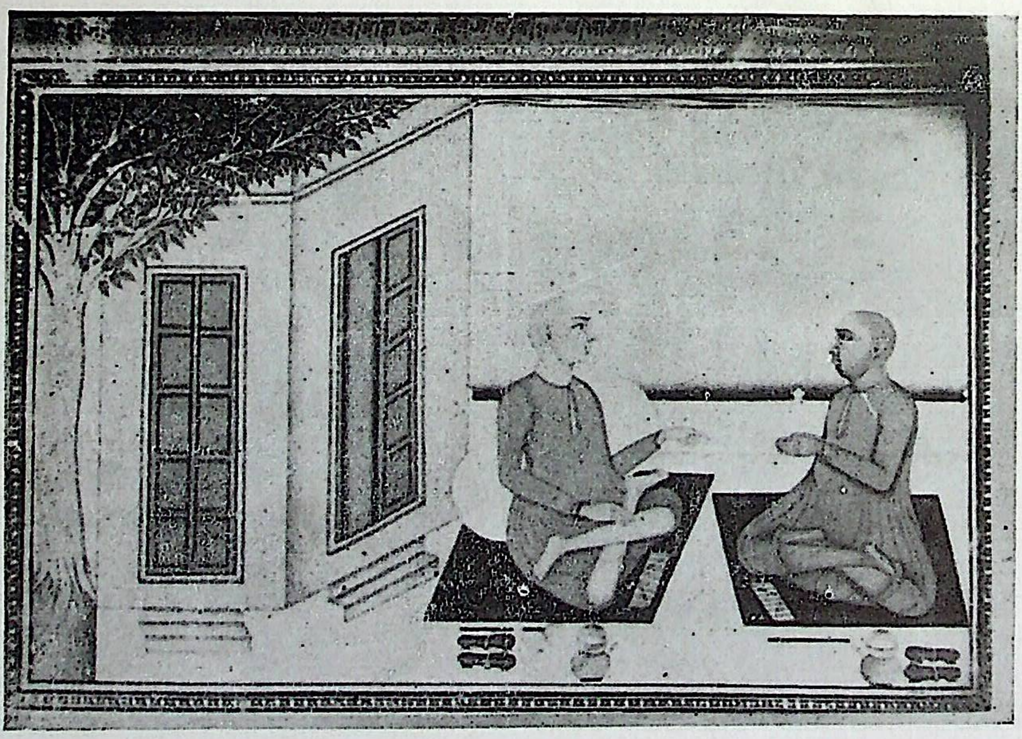

गुसाईं श्री लालगिरिजी व उनके शिष्य श्री लच्छीगिरि

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय १

अवतारवाद और निर्गुण भावना

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यस्ससुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ।।

—ऋग्वेद १/१६४/४६

प्रतिदिन प्रभात वेला में प्राची में उदित होकर प्रभाकर अपनी स्वर्णिम रश्मियों से दिग्दिगन्त को भर देता है। उदय और अस्त के क्रम में सूर्य का रथ कहीं विश्राम नहीं लेता। पवन का संचरण कभी अवरुद्ध नहीं होता। जल की सतत प्रवाहिनी धारा निरन्तर अपने वेग से चलती जाती है। ग्रीष्म में आदित्य की प्रखर किरणों से जब धरित्री के समस्त प्राणी विकल हो उठते हैं तो वर्षा की प्रथम फुहार आतप का नाश करने के लिए नीचे उतर आती है। शिशिर का प्रभंजन जब प्रकृति के समस्त सौन्दर्य का हरण कर उसे विद्रूप बना जाता है तो वसन्त का कोमल स्पर्श उसे हरीभरी बनाकर वातावरण को उन्मत्त कर देता है। सृष्टि के इस क्रम और व्यवस्था में जिस विराट और अव्यक्त सत्ता का संचालन है वही ब्रह्म है। समस्त ब्रह्माण्ड का कण कण जिसके आलोक से आलोकित और जिसकी शक्ति से गतिशील है वह चेतन स्वरूप ईश्वर अनेक नामों से पुकारा जाता है। उस एक को ही इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, सुपर्ण, यम, मातरिश्वा आदि संज्ञाओं से अभिहित किया जाता है।[1] वह शब्द, स्पर्श और रूप से रहित है,

---

1 ऋग्वेद १/१६४/४६

काश्मीर की मीरां ललद्यद (१४ वीं शताब्दी) ने भी ब्रह्म की सत्ता की एकता प्रतिपादित की है—

शिव् वा केशव् वा जिन् वा,
कमलजनाथ् नाम द्यारिन् युस् ।
म्य अबलि का्सितन् भवरुज् ,
सुह् वा सुह् वा सुह् वा सुह् ।। लल्लेश्वरी वाक्यानि, ८

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अव्यय है और हमेशा रस और गंध से हीन है। वह अनादि है, अनन्त है,बुद्धि तत्व से परे एवं ध्रुव हैं।[1] उसके हाथ न होते हुए भी वह सब वस्तुओं को ग्रहण कर लेता है। उसके पैर नहीं है पर उसकी गति सर्वत्र है। चक्षु रहित होते हुए भी वह सब कुछ देखता है। उसके कान नहीं हैं पर वह सब कुछ सुनता है। वह सबको जानता है पर उसको जानने वाला कोई नहीं है।[2] वह ऊर्णनाभि की भांति समस्त विश्व को अपने से ही उत्पन्न करके उसमें व्याप्त रहता है। जगत् के समस्त पदार्थ उसका आश्रय या आधार लिये हुए हैं। अथर्ववेद में ईश्वर के स्कम्भ या आधार रूप का संकेत करते हुए कहा गया है:—

स्कम्भेनेमे विष्टिभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः।
स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणन्निमिषच्च यत्।

—अथर्व १०/८/२

इस सृष्टि की उत्पत्ति उसकी इच्छा मात्र से ही हो जाती है। चाहे उसके पास कोई सामग्री न हो पर उसके 'एकोऽहं,वहुस्याम' कहते ही सृष्टि का निर्माण हो जाता है। इस तथ्य को बाइबिल[3] और कुरान[4] में भी स्वीकार किया गया है। सृष्टि के मूल ईश्वर की सत्ता वेदों में स्थान स्थान पर स्वीकार की गई है। आज विज्ञान का विकास हुआ है। जीवन की निरन्तर बढ़ती हुई समस्याओं ने व्यक्ति को चंचल बनाकर केन्द्र च्युत कर दिया है। वर्तमान बौद्धिक युग ने मनुष्य के विश्वास और विचारों को आन्दोलित कर दिया है पर सृष्टि में सर्वत्र जो क्रम, व्यवस्था, नियम, मर्यादा और अनुशासन है उसे देखकर यह मानना ही पड़ता है कि विश्व की प्रत्येक क्रिया का एक निश्चित उद्देश्य है और इस प्रकार के व्यवस्थित ब्रह्माण्ड का नियामक निश्चय ही सर्वशक्तिमान है।[5] वह अनन्त है, अनादि है, असीम है। देश और काल की सीमाओं से मुक्त उसका अस्तित्व प्रत्येक समय में निरन्तर वर्तमान रहता है।[6] आज के अणुयुग का महान् वैज्ञानिक भी ईश्वर के

[1] कठोपनिषद्, १/५५

[2] श्वेताश्वतरोपनिषद्, ३/१६

[3] God said 'Let there be light and there was light.' Bible—Old Testament, Book I

[4] खुदा ने कहा—'कुन' और दुनियां बन गयी।
कुरान अ–६० सूरा ३६ आयत ८२

[5] Pringle Pattison—The idea of God, P. 15

[6] Lewis Richard Farnell—Attributes of God, P. 255

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अस्तित्व में सन्देह नहीं करता और यह विश्वास प्रकट करता है कि ईश्वर के सर्वशक्तिमान, न्यायी और कृपालु रूप से मानव को आश्वासन, सहायता और निर्देश प्राप्त होता है।[1] यह सृष्टि उसी कलाकार की कला का अपूर्व चमत्कार है। सर्वत्र उसी का आलोक व्याप्त है। उसी के अनुपम सौन्दर्य से निःसृत सुन्दरता की धाराएं चारों ओर प्रवाहित हो रही हैं। सृष्टि में जो कुछ सुन्दर है वह उसी के सौन्दर्य का प्रतिबिंब है। विश्व के सुन्दर पदार्थों के माध्यम से हम ईश्वर की झलक पा सकते हैं।[2]

सृष्टि के मूल में विद्यमान चिरन्तन सत्ता पर वैदिक साहित्य में जो चिन्तन और मनन मिलता है वह यहाँ के क्रांत द्रष्टा ऋषियों की गहन स्वानुभूति का परिणाम है। उपनिषदों में ब्रह्म तत्व का वर्णन करते हुए उसे निर्गुण और सगुण बतलाया गया है। इसी को निष्प्रपंच व सप्रपंच ब्रह्म कहा गया है। इसे पर ब्रह्म तथा अपरं ब्रह्म भी कहते हैं। सगुण सविशेष, साकार और सोपाधि है तथा निर्गुण गुण, विशेषण, आकार और उपाधि से परे है। उपनिषदों में निर्गुण की अधिक चर्चा है पर सगुण का वर्णन करते समय भी ऋषि की वाणी काव्यमय बन जाती है। मुंडकोपनिषद् में लिखा है कि अग्नि उसका सिर हैं, चन्द्रमा और सूर्य उसके नेत्र हैं, दिशाएं उसके कान हैं, वेद उसकी वाणी से निःसृत हुए हैं। वायु उसका प्राण है,विश्व हृदय है, पृथ्वी उसके चरणों से उद्भूत हुई है। वह सबका अन्तरात्मा है:—

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चंद्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथ्वी ह्येष सर्वभूतांतरात्मा॥

—मुंडक २/१/४

यही सगुण ब्रह्म अपने स्वरूप, नाम आदि के आधार पर विभिन्न अवतारों के नाम से पुकारा जाता है। "अवतरणमवतारः" ऊंचे स्थान से नीचे स्थान पर उतरने को अवतरण या अवतार कहते हैं। भगवान् जब अपने लोक से इस संसार में आते हैं तो उनका सगुण रूप में आगमन अवतार माना जाता है। भगवान के पुरुष रूप की कल्पना हमें वेदों[3] में मिलती है।

भगवान् का अवतार कई रूपों में होता है। ईश्वर के मानव रूप की कल्पना

---

1 Albert Einstein—Out of my later years, P.27

2 Rufus M. Jones—Pathways to the reality of God, P.64

3 अथर्व वेद, १०/७/३२,३३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करने वालों का मत मानवाकारवाद (Anthropomorphism) कहलाता है । राम, कृष्ण आदि के अवतार को इसके अन्तर्गत माना जाता है । कई बार ईश्वर का अवतार मानव और पशु दोनों के मिश्रित रूप का होता है । इसे अर्द्धमानवाकारवाद (Theriomorphism) कहा जाता है। नृसिंह आदि का अवतार ऐसा ही है।

भारत में प्राचीन काल से ही अवतारवाद प्रचलित रहा है। अवतार के उद्देश्य के सम्बन्ध में गीता[1] में कहा गया है कि जब जब धर्म की हानि और अधर्म का अभ्युत्थान होता है तब तब भगवान अवतार लेते हैं। साधुओं की रक्षा और दुष्टों का दमन करने के लिए व धर्म स्थापना के लिए ईश्वर युग युग में अवतार लेते हैं । पर भगवान् के अवतार का मुख्य उद्देश्य तो भक्तों के लिए लीला विस्तार ही है लघुभागवतामृत में ब्रह्माण्डपुराण के वचन इसका समर्थन करते हैं:—

स्वालीलाकीर्तिविस्तारा‌द् भक्तेस्वनुजिघृक्षया ।
अस्य जन्मादि लीलानां प्राकट्ये हेतुरुत्तमः ।।

महाप्रभु वल्लभाचार्य[2] ने अवतार के मूल में लीला को ही माना है । लीला ही उसका कारण है और लीला ही उसका उद्देश्य । यह लीला भी लीला के लिए ही है।

भारतीय अवतारों का स्वरूप और विज्ञान

पृथ्वी पर प्राणियों की उत्पत्ति और उनके विकास के सम्बन्ध में प्राणिशास्त्रियों ने विचार प्रकट किया है कि आरम्भ में सर्वत्र जल ही जल था । उस समय धरती कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती थी । सर्व प्रथम पानी में उत्पन्न होनेवाले प्राणियों ने जीवधारण किया । पानी कुछ कम होने पर ऐसे जीव आये जो जल-थल दोनों पर चल सकते थे। इसके अनन्तर पृथ्वी पर रहने वाले प्राणी हुए जिसका सबसे विकसित रूप मनुष्य है। भारतीय अवतारों में मत्स्य,कच्छप, वाराह,नृसिंह, राम, कृष्ण आदि का क्रम इसी तथ्य की ओर संकेत करता है ।[3]

भारतीय अवतारों की संख्या

वेदों में अनेक देवताओं का वर्णन होते हुए भी वहाँ अवतार की दृष्टि से कोई क्रम विभाजन नहीं किया है। वैदिक ऋषि ने "एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति" कहकर शाश्वत सत्य को व्यक्त किया । जब आर्यों के जीवन में उत्तरोत्तर स्थिरता आती गयी

---

[1] गीता, अध्याय ४. श्लोक ७,८

[2] सुबोधिनी, (भागवत, तृतीय स्कन्ध)
'लीला नाम विलासेच्छा

[3] Purans in the light of Modern Science P. 209-213

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और वीर-पूजा की भावना दृढ़ हो गयी तो यहां अवतारों की कल्पना की गयी । वेदों के विराट् के गुण उस अवतार में भी समाविष्ट हो गये। यद्यपि वेदों में वासुदेव कृष्ण की चर्चा नहीं है पर अवतारों में सबसे पहले उन्हीं की पूजा होने लगी थी। जैकोबी का कहना है कि कृष्ण आरम्भ में एक जातीय वीर (National Hero) के रूप में पूजे जाते थे। उस समय गोपाल कृष्ण और वासुदेव कृष्ण भिन्न भिन्न थे। आगे चलकर दोनों एक हो गये।

महाभारत में एक स्थल पर अवतारों की संख्या ६ बतायी गयी है पर शान्ति-पर्व के ३३९ वें अध्याय में उनकी संख्या १० हो जाती है। भगवान् अपने अवतारों के नाम बताते हुए नारद मुनि से कहते हैं:—

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहश्च वामनः
रामो रामश्च रामश्च कृष्णः कल्की च ते दश

गीताप्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित महाभारत में यह श्लोक कोष्ठक में दिया हुआ है और उसकी कोई संख्या नहीं दी है। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर द्वारा (भाषा भाष्य समेत) स्वाध्यायमण्डल, औंध से प्रकाशित महाभारत में उपर्युक्त श्लोक नहीं मिलता। कुछ विद्वानों[1] का मत है कि यह अंश प्रक्षिप्त है। इन अवतारों में बुद्ध का नाम न होने से यह भी अनुमान लगाया गया है कि अवतार की कल्पना बुद्ध से भी पुरानी है।

भागवत में कई बार अवतारों की चर्चा की गयी है। भागवत मध्यकाल का भक्ति सम्बन्धी सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें अवतारों का वर्णन करते हुए उनकी संख्या सर्वत्र समान नहीं रखी गयी है। अवतारों के नामों का उल्लेख सर्वप्रथम प्रथम स्कंध के तृतीय अध्याय में मिलता है। वहां भगवान के निम्नलिखित २२ अवतार गिनाये गये हैं:—

(१) ब्राह्मण (सनकादि) (२) सूकर (३) नारद (४) नर-नारायण (५) कपिल (६) दत्तात्रेय (७) यज्ञ (८) ऋषभ (९) पृथु (१०) मत्स्य (११) कूर्म (१२) धन्वन्तरि (१३) मोहिनी (१४) नृसिंह (१५) वामन (१६) परशुराम (१७) वेद-व्यास (१८) राम (१९) बलराम (२०) कृष्ण (२१) बुद्ध (२२) कल्कि।

द्वितीय स्कंध के सप्तम अध्याय में इनकी संख्या २३ हो जाती है और एकादश

---

[1] Dr. R. G. Bhandarkar—Vaishnavism, Shaivism and other religious systems of India, Page 59

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्कंध के चतुर्थ अध्याय में उनकी संख्या १६ है। वैसे भगवान् के २४ अवतार माने जाते हैं पर अधिकांश ग्रन्थों में उनके १० अवतारों का ही उल्लेख है। इनमें से कुछ का वर्णन तो संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों में मिल जाता है। वराह अवतार का शतपथ ब्राह्मण[1] व तैत्तिरीय संहिता[2] में, मत्स्य का शतपथ[3] ब्राह्मण में, कूर्म का जैमिनीय ब्राह्मण[4] में, वामन का तैत्तिरीय संहिता[5] व शतपथ ब्राह्मण[6] में उल्लेख मिलता है। वामन की कथा का बीज रूप में संकेत ऋग्वेद में मिलता है। शाकपूणि ने समझाया है कि वामन के तीन पैरों का रूपक वास्तव में पृथ्वी पर अग्नि, वायुमण्डल में इन्द्र अथवा वायु और आकाश में सूर्य का आधार लिये हुए है। और्णवाभ का कहना है कि सूर्य का उदय, मध्याह्न और अस्त ही विष्णु के तीन पैरों के रूपक के माध्यम से समझाया गया है।

इसी अवतारवाद की भावना ने आगे चलकर उस भक्ति आन्दोलन को जन्म दिया जिससे समस्त भारत रस-स्निग्ध हो उठा।

भक्ति का उद्गम्

भारत भूमि भक्ति की पावन धारा से प्राचीन काल से ही सिञ्चित रही है। कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने यह मत प्रकट किया है कि भक्ति पश्चिम की देन है। ये वे ही लोग हैं जो कृष्ण को खीष्ट (Christ) का भारतीय रूप बताते हैं। वैदिक संहिताओं में चाहे भक्ति शब्द का प्रयोग न मिले पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत में भक्ति का प्रवाह वैदिक काल से ही मिल जाता है। वेदों में विभिन्न देवों के प्रति जो दृढ अनुराग और श्रद्धा की भावना व्यक्त की गयी है उसे निश्चय ही भक्ति का बीज रूप कहा जा सकता है। वेदों में ज्ञान और कर्म के साथ उपासना को भी अधिक महत्त्व दिया है। गीता के अठारह अध्यायों में कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों का स्वरूप-विवेचन करके उनका महत्त्व

---

1 शतपथ ब्राह्मण, १४/१/२/११

2 तैत्तिरीय संहिता, ७/१/५/१

3 शतपथ ब्राह्मण, १/८/१/१

4 जैमिनीय ब्राह्मण ३/२७२

5 तैत्तिरीय संहिता २/१/३/१

6 शतपथ ब्राह्मण १/२/५/१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रतिपादित किया गया है। 'भक्ति' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग हमें श्वेताश्वतर[1] उपनिषद् में मिलता है। इसमें कहा गया है कि जिसकी देवता और गुरु में पराभक्ति होती है उसी को ये (शास्त्रों में कहे गये) अर्थ प्रकाशित होते हैं।

भक्ति की उत्पति के सम्बन्ध में पद्मपुराण में एक कथा आती है। नारद के प्रश्न करने पर भक्ति अपना परिचय देते हुए कहती है :—

उत्पन्ना द्राविडे साहं वृद्धि कर्णाटके गता।
क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता॥[2]

मैं द्रविड़ देश में उत्पन्न होकर कर्णाटक में बढी और फिर महाराष्ट्र में कुछ कुछ क्षीण होती हुई गुजरात में सर्वथा जराग्रस्त हो गयी। इस बात का समर्थन कबीर की एक साखी से भी होता है :—

भक्ति द्राविड़ ऊपजी लाये रामानन्द।
परगट किया कबीर ने सप्त द्वीप नवखण्ड॥

इससे स्पष्ट पता चलता है कि मध्य युग का भक्ति आन्दोलन दक्षिण से उत्तर की ओर आया। पर इससे भी पूर्व आर्यों के जीवन में भक्ति की भावना किस रूप में थी यह पता नहीं चलता। कहा गया है कि जिस भक्ति मार्ग के अचल शिलाधार पर इस धर्म (वैष्णव धर्म) की मूलभित्ति खड़ी है उसका अस्तित्व कम से कम संहिता-भाग की रचना के समय तक नहीं था।[3] आरम्भ में भक्ति शब्द का प्रयोग उसी अर्थ में नहीं होता था जिस अर्थ में उसका प्रयोग बाद में हुआ। डा० भांडारकर[4] का कहना है कि आरम्भ में भक्ति शब्द श्रद्धात्मक प्रेम की अपेक्षा प्रेम मात्र के अर्थ में बहुधा प्रयुक्त हुआ करता था। कीथ[5] का अनुमान है कि भक्ति की वैष्णवानुमोदित भावना का आविर्भाव आर्यों के आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारों में पीछे अधिक गम्भीरता आने पर हुआ। पर नवीन

---

1 श्वेताश्वतरोपनिषद, ६/२३

2 पद्मपुराण उत्तरखंड, श्री भागवत माहात्म्य, अध्याय १, श्लोक ४८

3 श्री परशुराम चतुर्वेदी— "वैष्णव धर्म" पृ.०-१०

4 Dr. R. G. Bhandarkar—Vaishnavism, Shaivism and other religious systems of India—Page 41

5 Keith—Kalyan Kalaptaru, August 1936, Page 554

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शोध[1] से यह बात प्रमाणित हो गयी है कि चाहे 'भक्ति' शब्द वैदिक ऋचाओं में न मिले पर भक्ति भावना का वहां पूर्ण और विस्तृत वर्णन है। एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा :—

तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद
ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन ।
आस्य जानन्तो नाम चिद् विविक्तन
महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ।।[2]

भक्ति का स्वरूप

भक्ति के द्वारा भक्त भगवान् से अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है। भक्ति एक भावना है जिसका आश्रय है भक्त का हृदय और आलम्बन है भगवान् । भक्ति में भगवान, भक्त और भक्ति के अतिरिक्त गुरू की सत्ता भी स्वीकार की गयी है—

भक्त, भक्ति, भगवन्त, गुरु, चतुर नाम वपु एक[3]

भक्ति का लक्षण बताते हुए महर्षि शाण्डिल्य ने 'भक्ति दर्शन' में लिखा है—

सापरानुरक्तिरीश्वरे ।।२।।

अर्थात् ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण अनुराग का नाम भक्ति है। नारद के 'भक्ति सूत्रम्' में भी यही कहा गया है कि यह (भक्ति) परमात्मा में परम प्रेमरूप वाली है--

सात्वस्मिन् परमप्रेमरूपा ।।२।।

भागवत[4] में बताया गया है कि जिसका चित्त एक मात्र भगवान् में लग गया है ऐसे मनुष्य की भगवान् के प्रति स्वाभाविक वृत्ति ही भक्ति है। यह मुक्ति से भी बढ़ कर है और कर्म संस्कारों के भण्डार रूप लिंग शरीर को नष्ट कर देती है:—

देवानां गुणलिंगानामानुश्रविककर्मणाम् ।
सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ।।

---

1 डा० मुंशीराम—"भक्ति का विकास" पृ० १११ से १६४ वैदिक भक्ति शीर्षक चतुर्थ अध्याय व डा० विजयेन्द्र स्नातकका "राधावल्लभ सम्प्रदाय-सिद्धांत और साहित्य" पृ. १-३७

2 ऋग्वेद, १/१५६/३

3 श्री नामाजी कृत श्री भक्तमाल, आदि का दोहा

4 भागवत, तृतीय स्कन्ध अध्याय २५, श्लोक ३२, ३३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ।
जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा ॥

कठोपनिषद[1] का 'प्रसाद' और भागवत[2] का 'पोषण' भगवत्कृपा को महत्त्व देते हैं ।

'भक्तिरसायन' के अनुसार भक्ति मन की वह वृत्ति है जो आध्यात्मिक साधना से द्रवीभूत होकर ईश्वर की ओर प्रवाहित होती है:—

द्रुतस्य भगवद्धर्मात् धारावाहिकतांगता ।
सर्वेशे मनसो वृत्तिः भक्तिरित्याभिधीयते ॥

भक्ति के प्रकार

भागवत में नवधा भक्ति का उल्लेख मिलता है:—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ ७/५/२३

नारदीय भक्ति सूत्र[3] में भक्ति का एक रूप मानकर भी उसके ग्यारह प्रकार गिनाये गये हैं:—

(१) गुणमाहात्म्यासक्ति (२) रूपासक्ति (३) पूजासक्ति (४) स्मरणासक्ति (५) दास्यासक्ति (६) सख्यासक्ति (७) कान्तासक्ति (८) वात्सल्यासक्ति (९) आत्मनिवेदनासक्ति (१०) तन्मयतासक्ति (११) परमविरहासक्ति ।

भक्ति के साधन और साध्य पक्ष को ध्यान में रखकर उसके दो भेद किये गये हैं:—

वैधी रागानुगा चेति सा द्विधा साधनाभिधा ।[4]

जो भक्ति शास्त्रों के विधि-निषेध का पालन करते हुए की जाती है उसे वैधी कहते हैं । रागानुगा भक्ति भगवान् के प्रति प्रेम को ही प्रधान मानती है । भगवान् के साथ सम्बन्ध की दृष्टि से रागानुगा भक्ति के चार भेद किये जाते हैं:—

---

[1] कठोपनिषद, १/२/२०

[2] भागवत, द्वितीय स्कन्ध, अध्याय १०. श्लोक ४

[3] नारदप्रोक्तं भक्तिसूत्रम्, ८२

[4] श्री हरिभक्तिरसामृतसिन्धु, पूर्वविभाग, २/३

Kirtikant Sharma Collection,, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(१) दास्य—हनुमान (२) सख्य—अर्जुन व उद्धव (३) वात्सल्य—नन्द यशोदा (४) दाम्पत्य—गोपियां ।

भागवत में भक्ति सम्बन्धी दृष्टिकोण वैसा ही नहीं है जैसा हम गीता आदि में पाते हैं । भागवत [1] में भक्ति को सर्वोपरि स्थान देते हुए कहा गया है: -

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ।।

फर्कुहर[2] ने लिखा है कि भागवत में भक्ति का जो रूप मिलता है वह चित्त को द्रवित करने वाला व वाणी को गद्गद् करने वाला है । भक्त कभी प्रभु के वियोग में रोता है, कभी संयोग में हँसता है और कभी हँसता गाता हुआ आवेश से मूर्च्छित हो जाता है । भक्ति का यह रूप भगवद्गीता या रामायण से बहुत भिन्न है ।

यही भागवत भक्ति मध्ययुगीन भक्ति धारा का स्रोत है ।

भक्ति का विकास

दक्षिणी भारत में जब आळवारों की भक्ति अपना स्वरूप ग्रहण कर रही थी उस समय उत्तरी भारत में राजनीति, धर्म और समाज में अव्यवस्था बढ़ रही थी । हर्षवर्द्धन की मृत्यु के बाद थानेश्वर की राज्य लक्ष्मी चञ्चल हो उठी थी । बौद्ध धर्म शंकर की ज्ञान गरिमा के समक्ष नत मस्तक होने को प्रस्तुत हो रहा था । यवन आक्रांता भारतीय संस्कृति का उच्छेद करने पर तत्पर हो रहे थे । देश नाना सम्प्रदायों में विभाजित था । जिस प्रबल वेग से यवनों के आक्रमण निरन्तर हो रहे थे उससे यह आशंका हो रही थी कि भारत इन निरन्तर के धक्कों को सहन करने में असमर्थ रहेगा । पर दक्षिण में आळवारों ने अपनी प्रेममयी वाणी से जो चेतना उत्पन्न की उसने कोटि कोटि जनता को भक्ति के मार्ग पर ला खड़ा किया । भक्ति की वन्या ने विदेशी मंकिल को शान्त कर दिया ।

'आळवार' तामिळ शब्द है जिसका अर्थ है आध्यात्मिक ज्ञान समुद्र में गहरा गोता लगाने वाला व्यक्ति ।[3] इन आळवारों के समय के सम्बन्ध में एक मत नहीं है। साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार ये ईसा के पूर्व तीसरी चौथी शताब्दियों के पहले ही होगये थे ।[4] डा.

[1] भागवत, ११/१४/२०

[2] J. N. Farquhar—An outline of the religious literature of India, Page 230

[3] डा. श्रीकृष्णलाल—आलोचना के 'इतिहास अंक' में 'भक्ति काव्य' शीर्षक लेख

[4] डा. हिरण्मय—हिन्दी और कन्नड़ में भक्ति आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन पृ. १६१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुंशीराम शर्मा[1] ने इनका समय दो सौ ईसवी से लेकर नौ सौ ईसवी तक माना है। "हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास' (प्रथम भाग) में इनका आविर्भाव काल ५वीं से १०वीं शती तक बताया गया है।[2] किसी ने इनका समय और भी आगे बढाकर ७ वीं से ९वीं शताब्दी तक अनुमानित किया है।[3] प्रो० रानाडे के अनुसार वे ईसा की छठी शताब्दी में हो चुके थे।[4] पर भागवत[5] के कुछ श्लोकों की ध्वनि से विदित होता है कि आळवार काफी पहले हो चुके हैं। उसमें कहा गया है कि कलियुग में अधिकांश भक्त द्रविड़देश में होंगे जहाँ ताम्रपर्णी, कृतमाला, पयस्विनी, कावेरी, प्रतीची और महानदी आदि नदियां बहती हैं। आश्चर्य है कि सभी नदियाँ दक्षिण भारत की हैं और अधिकांश आळवार भक्तों का जन्म इन नदियों के तटवर्ती स्थानों पर हुआ। इससे प्रतीत होता है कि भागवत की रचना के समय आळवारों की स्थिति अवश्य थी। भागवत का रचना काल तीसरी शताब्दी के बाद का नहीं कहा जा सकता। अतः यह माना जा सकता है कि कई आळवार तीसरी शताब्दी से पूर्व ही हो चुके होंगे।

आळवारों की संख्या १२ मानी जाती है। इनमें सात ब्राह्मण, एक क्षत्रिय तथा ३ निम्न वर्ग के थे। आन्डाल पेरिय की पालित पुत्री थी। इन आळवारों की प्रेम व्यञ्जना इतनी तीव्र थी कि बड़े बड़े आचार्य उनके समक्ष नत होगये। इनके यहाँ ऊँच-नीच का भेदभाव न था। स्वयं आळवारों में ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र व अन्त्यज थे अतः इनके अनुयायी भी सभी जातियों के लोग थे।

आळवारों ने अपनी रचनाओं में भगवान् श्री रंगम् के प्रति अनन्य अनुराग प्रकट किया है। उन्होंने आत्मसमर्पण को ईश्वर-प्राप्ति का एक मात्र साधन माना है। तिरूमळिशै अपने एक पद में कहते हैं:—

"मैंने ब्राह्मण जाति में जन्म नहीं लिया है, मुझ में चतुर्वेद का ज्ञान नहीं है, इन्द्रिय-निग्रह किसे कहते हैं यह मुझे मालूम नहीं है, मैं तो एक बात जानता हूँ, वह है श्री हरि के पादपद्म। हे देव, तुम्हारे स्वर्ण चरण के सिवा मेरा दूसरा कौन रक्षक है।"[6]

---

[1] डा. मुंशीराम शर्मा—भक्ति का विकास, पृ. ३५४
[2] सं० राजवली पांडेय—हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग १, पृ. ५३४
[3] कल्याण 'सन्त अंक' पृ. ४०५
[4] R. D. Ranade—Mysticism in Maharashtra, P.17
[5] भागवत, ११/५/३८, ३९, ४०
[6] एम. यामुनाचार्य—आळवारगळ, पृ. १३ डा० हिरण्मय द्वारा उद्धृत

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आळवारों ने ऊँच-नीच की भावना का विरोध करने के अतिरिक्त अनेक आचार्यों को अपनी ओर आकर्षित किया। इनमें सबसे प्रमुख और प्रसिद्ध रामानुजाचार्य हैं जिन्होंने 'श्री सम्प्रदाय' चलाया। अतः ऐतिहासिक काल में राम भक्ति की जो धारा चली उसके आदि प्रवर्तक आळवार ही माने गये हैं।[1] श्री वैष्णव सम्प्रदाय के तो ये आदि गुरु माने ही जाते हैं।[2]

आचार्य परम्परा

यद्यपि आळवारों में कई संस्कृत के विद्वान् भी थे पर सर्व प्रथम आचार्य नाथमुनि ही माने जाते हैं। इनका समय नवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। इन्होंने आळवारों के गीतों का संग्रह किया जो 'नालायिर प्रबन्धम्' के नाम से प्रसिद्ध है। उस समय संस्कृत के अनेक ब्राह्मण पंडितों ने मन्दिरों में आळवारों के गीत गाये जाने का विरोध किया। पर नाथमुनि के प्रयत्न से उस विरोध का कोई प्रभाव न पड़ा और ये गीत श्री रंगम् के मन्दिर के प्राङ्गण में प्रतिध्वनित होने लगे। नाथमुनि के पौत्र यामुनाचार्य हुए और आगे चल कर ये अपने पितामह के शिष्य बने। श्री रामानुज इन्हीं यामुनाचार्य की गद्दी के उत्तराधिकारी बने।

श्री सम्प्रदाय और रामानुज

रामानुज का जन्म मद्रास के पास तेरुँकुदूर नामक गांव में हुआ। श्री बलदेव उपाध्याय[3] व भक्तमाल (भक्तिसुधास्वाद तिलक)[4] के अनुसार उनका जन्म ईसवी सन् १०१७ (विक्रमी संवत् १०७४) में हुआ। डा. हिरण्मय[5], डा. भगवती प्रसाद सिंह[6] और डा. सरनामसिंह[7] उनका जन्म सन् १०१६ (विक्रमी संवत् १०७३) मानते हैं। श्री रामलाल[8] ने पता नहीं किस आधार पर उनके जन्मकाल को और आगे बढाकर

---

1 डा. भगवतीप्रसाद सिंह—रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ. ४७

2 डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी—मध्यकालीन धर्म साधना, पृ. ३३

3 बलदेव उपाध्याय—भागवत सम्प्रदाय पृ. २०३

4 भक्तमाल (भक्तिसुधास्वाद तिलक)—पृ. २६५

5 डा. हिरण्मय—हिन्दी और कन्नड़ में भक्ति आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन पृ. २६

6 डा. भगवती प्रसाद सिंह—रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ. ५७

7 डा. सरनामसिंह—रामानुजाचार्य विशिष्टाद्वैतिक भक्ति-दर्शन, पृ. १

8 रामलाल—भारत के सन्त महात्मा, पृ. ८१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सन् १०३७ (विक्रमी संवत् १०९४) लिखा है । श्री परशुराम चतुर्वेदी[1] ने उनका जन्म सन् १०२७ (विक्रमी संवत् १०८४) माना है । उपर्युक्त मतों में विभिन्नता होते हुए भी यह अनुमान होता है कि रामानुजाचार्य का जन्म ईसवी सन् १०१७ के आसपास हुआ । डा. मुंशीराम[2] ने भी यही अनुमान किया है ।

रामानुज का बचपन काँजीवरम् में व्यतीत हुआ । वहां वे यादवप्रकाश नामक एक अद्वैतवादी विद्वान् के शिष्य बने । आळवारों के कारण उस समय दक्षिण में वैष्णव धर्म का प्रभाव बढ रहा था । यद्यपि शंकर के अद्वैत की वाणी उच्चारण करने वाले लोग भी काफी थे पर उत्तरोत्तर उनका स्वर क्षीण पड़ रहा था । सामान्य जनजीवन को शंकर का निर्गुण ब्रह्म अपनी ओर आकर्षित करने में असमर्थ था । आळवारों और उनके उत्तराधिकारी आचार्यों ने श्री रंगजी के माध्यम से जिस वैष्णव भक्ति की पावन धारा प्रवाहित की उसमें निमज्जित होने के लिए जन-समुद्र उमड़ पड़ा । रामानुजाचार्य भी उससे अप्रभावित न रह सके । गुरु-शिष्य में विवाद उत्पन्न हो गया । यादवप्रकाश शंकराचार्य के अद्वैत मत का प्रबल समर्थक था । वह यह कैसे सहन कर सकता था कि उसी का एक शिष्य उसकी विचारधारा का विरोधी हो । यादवप्रकाश ने रामानुज के ही चचेरे भाई और सहपाठी गोविन्द भट्ट को अपनी ओर मिलाकर उनकी हत्या का षड्यंत्र रचा । तीर्थयात्रा का बहाना बनाकर जाल फेंका गया । पर "जाको राखे साइयां मार सकै नहीं कोय ।" कहा जाता है कि भगवान् वरदराज ने श्री लक्ष्मीजी सहित उनको दर्शन दिये और उनकी प्राण रक्षा की । भगवान् में उनकी आस्था और भी दृढ हो गयी । शंकर का निर्गुण और निर्विशेष उनके खंडन का विषय बना ।

यामुनाचार्य मृत्यु-शय्या पर थे । मन की कुछ अभिलाषाएं अपूर्ण रह गयी थीं । उन्हें रामानुज की प्रतिभा पर पूर्ण विश्वास था । अन्तिम काल जान अपने शिष्य को भेज उन्होंने रामानुज को बुलाया । जब ये श्रीरंगम् पहुँचे तो उनके प्राण-पक्षी प्रयाण कर चुके थे । आचार्य की तीन अंगुलियों को मुड़े हुए देख इन्होंने दृढ निश्चय किया कि मैं :—

(१) ब्रह्म सूत्र (२) विष्णु सहस्रनाम और (३) दिव्य प्रबन्धम्

---

[1] परशुराम चतुर्वेदी—उत्तरी भारत की संत परम्परा—भूमिका, पृ. ८३

[2] डा. मुंशीराम—भक्ति का विकास पृ. ३६१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की टीका लिखूंगा और लिखवाऊंगा। कहा जाता है कि इस पर यामुनाचार्य की अंगुलियां सीधी हो गयीं।

रामानुज ने यामुनाचार्य के प्रधान शिष्य पेरियनाम्बि से विधिवत् वैष्णव-धर्म की दीक्षा ली और भक्ति मार्ग में प्रवृत्त हुए। गुरु ने रामानुज को अष्टाक्षर मन्त्र (ऊँ नमो नारायणाय) का रहस्य समझाया और उसे गोपन रखने की आज्ञा दी। परम दयालु रामानुज ने जगत् उद्धारक मन्त्र सब पर प्रकट कर दिया। गुरु अप्रसन्न हो गये और कहा कि इसके कारण तुम्हें नरक भोगना पड़ेगा। रामानुज ने उत्तर दिया कि इस मंत्र से लाखों व्यक्तियों का उद्धार हो जायेगा अतः यदि इन सबके बदले मुझे नरक भी मिले तो चिन्ता नहीं। यह उत्तर सुन गुरु का क्रोध जाता रहा।

उस समय श्रीरंगम् चोलवंशीय राजाओं के अधिकार में था। ये शैव थे। इनकी कट्टरता यहां तक बढ़ी हुई थी कि इन्होंने श्रीरंग के मन्दिर पर भी "शिवात्परं नास्ति" (शिव से बढ कर कोई नहीं है) शब्द एक ध्वजा पर अंकित करा दिये।[1] इतना ही नहीं, राजा कुळोतुंग ने शैव-मत को न मानने वाले रामानुज को भी कठोर दंड देने की योजना बनाई। उसने रामानुज को अपने दरबार में बुलाया। एक ओर सत्ता में चूर शासक का आदेश था। दूसरी ओर वैष्णव धर्म के प्रचार का महान् कार्य था। रामानुज जानते थे कि यदि वे कुळोतुंग की राजसभा में गये तो वहां से सकुशल नहीं लौटेंगे। रामानुज ने श्रीरंगम् छोड़ दिया और वे मैसूर के राजा वितदेव के यहां चले गये। वितदेव जैन धर्मानुयायी थे पर रामानुज के प्रभाव से उन्होंने वैष्णव धर्म स्वीकार कर लिया।[2] इतिहास में ये विष्णुवर्धन के नाम से प्रसिद्ध हैं।

रामानुजाचार्य के एक शिष्य कुरेश उनके वस्त्र पहन राजा कुळोतुंग की राजसभा में गये। उन्होंने निर्भयता से वहाँ वैष्णव सिद्धान्तों का समर्थन किया। परिणामस्वरूप उनके नेत्र निकाल लिये गये। अपने गुरु के लिए कुरेश का यह त्याग महान् है। कुळोतुंग ने रामानुज को भी पकड़ना चाहा पर वे पहले ही उसके चंगुल से निकल कर मैसूर पहुँच गये थे।

कुळोतुंग की मृत्यु होने पर रामानुज श्रीरंगम् लौट आये। उन्होंने वहाँ अनेक

[1] कल्याण, संत अंक, पृ. ४३२

[2] डॉ० सरनामसिंह—रामानुजाचार्य विशिष्टाद्वैतिक भक्ति दर्शन, पृ. १

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया। कुछ नये मन्दिर बनवाये। एक नये मन्दिर में तो उन्होंने नम्माळवार और दूसरे में आळवारों की प्रतिमाएँ स्थापित करदीं।

रामानुजाचार्य ने सारे देश का भ्रमण करके लाखों व्यक्तियों की जीवन धारा को एक नया मोड़ दिया। भक्ति की वाणी से गगन गूँज उठा। सदियों पूर्व उन्होंने अछूतों को मन्दिर-प्रवेश का अधिकार देकर समाज के समक्ष एक नया आदर्श रखा। कहा जाता है कि १२० वर्ष की आयु में वे परमधाम पधारे।

रचनाएँ

रामानुजाचार्य के निम्नलिखित ग्रंथ प्रसिद्ध हैं:—

(१) वेदार्थ संग्रह (२) वेदांत सार (३) वेदांत दीप (४) गद्यत्रय (५) गीता भाष्य और (६) श्री भाष्य। इन्हीं ग्रंथों में उनके सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है। उनका मत विशिष्टाद्वैत नाम से प्रसिद्ध हुआ। उन्होंने जिस 'श्री सम्प्रदाय' का प्रवर्तन किया उसका आधार विशिष्टाद्वैतवाद ही है।

श्री सम्प्रदाय

'श्री सम्प्रदाय' के नाम के संबंध में बताया गया है कि चूंकि इस सम्प्रदाय की आद्यप्रवर्तिका श्री श्री महालक्ष्मीजी मानी जाती हैं अतः यह 'श्री सम्प्रदाय' कहलाता है।[1] किसी किसी का यह भी मत है कि 'श्री सम्प्रदाय' का कोई स्वरूप, सिद्धांत, दर्शन, देवता, मन्त्र, साधना-पद्धति शास्त्रीय रूप में नहीं मिलती। जो कुछ मिलता है वह सब ही रामानुजाचार्य का है और उसी को 'श्री सम्प्रदाय' कह दिया गया है।[2] श्री बलदेव उपाध्याय[3] ने लिखा है—'श्री के द्वारा प्रवर्तित होने के कारण यह वैष्णव मत 'श्री वैष्णव" के नाम से विख्यात है।

दार्शनिक पक्ष

रामानुज का मत विशिष्टाद्वैत के नाम से प्रसिद्ध है। इस मत के अनुसार पदार्थ तीन ही हैं चित् अर्थात् भोक्ताजीव, अचित् अर्थात् भोग्य जगत एवं ईश्वर अर्थात् अंतर्यामी। ब्रह्म की एकता अद्वितीय नहीं है बल्कि वह चिन्मय आत्मा तथा जड़ प्रकृति से विशिष्ट

---

[1] कल्याण : 'संत अंक' पृ. ४३२

[2] डा. विजयेन्द्र स्नातक—राधावल्लभ सम्प्रदाय: सिद्धान्त और साहित्य, पृ ४८

[3] बलदेव उपाध्याय—भागवत सम्प्रदाय, पृ. २००

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। जीव और जगत् नित्य एवं स्वतंत्र हैं पर इनमें भी ईश्वर अन्तर्यामी रूप से विद्यमान हैं अतः ये ईश्वर के प्रकार हैं।

ब्रह्म एक ही है, 'पर' और 'अपर' भेद से दो प्रकार का नहीं। शंकर के निर्गुण ब्रह्म का रामानुज ने स्पष्ट विरोध किया है और बताया है कि निर्विशेष या निर्गुण वस्तु का ज्ञान नहीं हो सकता। अद्वितीय ब्रह्म विशिष्ट पदार्थ है, जीव और प्रकृति उसके विशेषण हैं, इस विशिष्ट रूप में ब्रह्म ही एकमात्र तत्व है।[1] ब्रह्म दो प्रकार का होता है—कारणावस्थ ब्रह्म तथा कार्यावस्थ ब्रह्म। प्रलय काल में जो स्वरूप रहता है वह कारण रूप होने से 'सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट' कहलाता है। इसी प्रकार सृष्टि-काल में जो स्वरूप रहता है वह कार्य रूप होने से 'स्थूल चिदचिद्विशिष्ट' कहलाता है। ये दोनों विशिष्ट रूप हुए। इनमें अद्वैत होने (वास्तविक अभेद होने) से इस सिद्धान्त को 'विशिष्टाद्वैतवाद' कहते हैं।[2]

रामानुजाचार्य के अनुसार ब्रह्म की अभिव्यक्ति पांच रूपों में होती है। अपने भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए ईश्वर पांच रूप धारण करता है[3]—

(१) पर रूप (२) व्यूह जिसमें पांच रात्रों का चतुर्व्यूह आता है (३) विभव—जिसमें भुक्ति मुक्तिप्रद ३९ अवतारों की गणना हैं (४) अन्तर्यामी—जो सबके हृत्कमल में बैठकर सबको व्यापार में प्रवृत्त करता है और (५) अर्चावतार—मूर्तियां।

भक्त एकाएक अन्तिम रूप को हृदयंगम नहीं कर सकता अतः उसे प्रथम से आरम्भ करके क्रमशः सब रूपों की अनुभूति प्राप्त करनी चाहिए। अन्तिम स्थिति में वह ब्रह्म से मिलकर अनन्त आनन्द प्राप्त करता है। अभिज्ञान सम्मिलन (Conscious assimilation) विशिष्टाद्वैत की विशेषता है।[4]

रामानुज के मतानुसार जीव और जगत् की वास्तविक और पारमार्थिक सत्ता स्वीकार किये बिना काम नहीं चल सकता। ईश्वर तथा जगत् और जीवों में आत्मा और शरीर जैसा सम्बन्ध है। ईश्वर सबकी आत्मा है। मीमांसा की परिभाषा में कहें तो जीव और ईश्वर में शेष-शेषी-भाव सम्बन्ध है।[5] जीव में एक विशेष गुण होता है जिसे शेषत्व

---

1 देवराज—भारतीय दर्शनशास्त्र का इतिहास, पृ. ३८४

2 डा. सरनामसिंह—रामानुजाचार्य विशिष्टाद्वैतिक भक्ति दर्शन, पृ. २०

3 डा. मुंशीराम—भक्ति का विकास, पृ. ३६३

4 डा. रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. २९८

5 Sriniwasachari—Ramanuja's Idea of the Finite Self P. 40.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

या अधीनत्व कहा जाता है। वह अपने सारे कार्यों के लिए ईश्वर का सहारा लेता है। ईश्वर के आश्रय के बिना वह कुछ भी नहीं कर सकता है अतः जीव शेष है और ईश्वर शेषी।

विशिष्टाद्वैत में शंकराचार्य के ज्ञान के स्थान पर भक्ति गृहीत की गयी है। भक्ति में भी दास्य भाव ही माना गया है। इसीलिए रामानुज ने प्रपत्ति पर अधिक जोर दिया है। भगवान् के प्रति आत्मसमर्पण ही प्रपत्ति का स्वरूप है। भक्त को चाहिए कि वह सब धर्मों को छोड़कर अपने को केवल भगवान् का भोग्य समझे और ईश्वर-प्राप्ति में भगवान् को ही एकमात्र साधन मानकर उन्हीं के चरणों में श्रद्धा रखे।

महत्व

यद्यपि वैष्णव धर्म का इतिहास और साहित्य तो काफी प्राचीन है पर उसे जन-साधारण की वस्तु बनाने का श्रेय रामानुज को ही है। उन्होंने अपने सिद्धान्तों से जनता के धार्मिक और नैतिक विश्वास का समर्थन किया अतः यह कहा जा सकता है कि उनका दर्शन (विशिष्टाद्वैत) वास्तव में जनता का दर्शन है। शंकराचार्य ने जहां आत्मा का मिथ्यात्व बताकर उसके अस्तित्व के सम्बन्ध में लोगों में सन्देह उत्पन्न कर दिया था वहां रामानुज ने ईश्वर, आत्मा और सृष्टि का स्पष्ट अन्तर बताते हुए उनकी सत्यता में पुष्ट प्रमाण दिये। जनता का आत्मा के मिथ्यात्व में सन्देह दूर हुआ और आत्मा के अस्तित्व में उनका विश्वास दृढ़ हुआ। इसीलिए मैक्समूलर ने परिहास में लिखा है कि रामानुज ने हिन्दुओं को उनकी आत्माएं लौटा दीं।

उच्च वर्ण के लोग तो ज्ञान और भक्ति को साधन बना सकते हैं पर निम्न वर्ण के लोग इस मार्ग पर नहीं चल सकते। रामानुज ने शूद्रों व अन्य निम्न जातियों के लोगों के लिए प्रपत्ति का मार्ग बताया। भगवान् की शरण में चले जाना ही प्रपत्ति है। इस प्रपत्ति के कारण साधारण जन-समुदाय का एक बहुत बड़ा भाग रामानुज का अनुयायी बन गया। आज शंकर के ज्ञानमार्गी अद्वैत के अनुयायी थोड़े से 'पंडित' मात्र हैं पर रामानुज की सगुण भक्ति का अनुसरण करने वालों की संख्या कोटि कोटि है।

दक्षिण में आगे चल कर रामानुज के अनुयायियों में दो दल बन गये। एक शास्त्रोक्त भक्ति के स्वरूप का समर्थन करता था तथा दूसरा प्रपत्ति को ही प्रधान मानता था। पहले में श्री वेदान्तदेशिक और उनके अनुयायी थे जो मोक्ष के लिए भक्ति के साथ ज्ञान और कर्म भी आवश्यक बताते थे। ये लोग 'वडकले' कहलाये। दूसरे दल में मनवल

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महामुनि और उनके समर्थक थे जो केवल प्रपत्ति को ही ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र साधन मानते थे। ये लोग 'तेंकले' नाम से प्रसिद्ध हुए।

रामानन्द और उनका युग

श्री भक्तमाल[1] के अनुसार स्वामी रामानन्द का जन्म विक्रमी संवत् १३५६ तदनुसार ई० सन् १३०० में हुआ। अगस्त्य संहिता के भविष्योत्तर खंड में भी उनके आविर्भाव का यही समय माना गया है। पर वास्तविकता इससे भिन्न है। रामानंद दिल्ली के बादशाह सिकंदर लोदी के समय विद्यमान थे। कबीर और सिकंदर लोदी की भेंट होने के भी प्रमाण मिले हैं। इस आधार पर रामानन्द का आविर्भाव काल १५ वीं शती (१४१० ई०— १५१० ई०) माना गया है।[2]

रामानन्द के समय उत्तरी भारत में मुसलमानों के पैर दृढ़ता से जम चुके थे। उनका विरोध करने की शक्ति हिन्दुओं में नहीं रह गयी। समस्त देश में म्लेच्छों का आतंक फैल चुका था। अधिकांश जनता राजनीति से विरत हो गयी थी। हिन्दुओं की उदासीनता इतनी अधिक बढ़ गयी कि बख्तयार ने मुट्ठी भर सैनिकों को लेकर यू. पी. और बिहार को रौंदते हुए बंगाल पर अधिकार कर लिया। इतिहासकारों ने इसे भारतीय कायरता का सबसे बड़ा उदाहरण बताया है।[3] मुसलमानों के अत्याचार बढते जा रहे थे। हिन्दुओं के देखते देखते उनके मन्दिर धराशायी किये जा रहे थे। उनके इष्ट देवों की मूर्तियाँ उनके नेत्रों के समक्ष खंडित की जा रही थी। पर किसी में प्रतिरोध की शक्ति न थी। संगठन के अभाव में वे उत्तरोत्तर निर्बल होते जा रहे थे।

धार्मिक क्षेत्र में अनेक मत-मतान्तरों की धूम थी। नये नये सम्प्रदाय जन्म ले रहे थे। जनजीवन वास्तविक लोक-धर्म से दूर जा रहा था। तीर्थ एवं धार्मिक स्थान भी म्लेच्छों द्वारा पदाक्रान्त होकर अपवित्र हो चुके थे। लोगों की देवता, ब्राह्मण आदि से श्रद्धा हट रही थी। आडम्बरों से ग्रस्त और रूढियों से बद्ध होकर धर्म विकृत हो चला था। वेदध्वनि का घोष मन्द पड़ चुका था। मन्दिर की घंटा-ध्वनि बंद होती जा रही थी। पूजा के बाह्य रूपों से लोगों का विश्वास हट रहा था। नाथपंथियों और सिद्धों की चमत्कार-मयी उक्तियां समझने में लोग असमर्थ थे। शंकर का अद्वैत वातावरण में व्याप्त होकर भी

---

[1] भक्तमाल [भक्तिसुधास्वादतिलक] पृ. २८८

[2] बलदेव उपाध्याय — भागवत संप्रदाय, पृ. २५३

[3] डा. भगवतशरण उपाध्याय—भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण, पृ.१५५–५६

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

केवल पंडितों की वस्तु मात्र रह गया था। दक्षिण का भक्ति सागर लहराने लगा था और उसकी तरंगें उत्तरी भारत का स्पर्श करने लग गयी थीं।

सामाजिक स्थिति और भी विषम थी। वर्ण-व्यवस्था छिन्न भिन्न हो रही थी। मुसलमानों का 'अहले इस्लाम' निम्न जाति के हिन्दुओं को बड़ी तेजी से अपनी ओर आकर्षित कर रहा था और वे बहुत बड़ी संख्या में अपना धर्म और जाति परिवर्तन कर नवागत विदेशी धर्म को गले लगा रहे थे।[1] ऊँच-नीच और जाति-भेद की भावना ने समाज के कई स्तर बना दिये। उच्च वर्ण के लोग विलासिता में डूबे हुए थे। आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। चारों ओर अशान्ति का वातावरण था। इन्हीं परिस्थितियों में रामानन्द का जन्म हुआ।

रामावत सम्प्रदाय

रामानन्द ने विशिष्टाद्वैत को स्वीकार कर धर्म का जो रूप सामने रखा उसे लोगों ने रामावत सम्प्रदाय का नाम दिया। स्वयं रामानन्द ने कहीं भी इस शब्द का प्रयोग नहीं किया है। वैसे तो उनके नाम से अनेक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं पर विद्वानों ने 'श्री वैष्णव-मताब्ज-भास्कर' तथा 'श्री रामार्चन पद्धति' को ही स्वामी रामानन्द की प्रामाणिक रचना के रूप में स्वीकार किया है।[2] इस सम्प्रदाय में भगवान रामचन्द्र को ही परम पुरुष माना गया है। कहा जाता है कि रामानंद के विचारों पर ईसाई मत का प्रभाव पड़ा है।[3] पर यह विचार सत्य नहीं प्रतीत होता। रामानंद पर सबसे अधिक प्रभाव रामानुज का ही है। इतना अन्तर अवश्य है कि उन्होंने रामानुज के विष्णु के स्थान पर राम को अपना पूज्य बनाया और जनता को राम की भक्ति का उपदेश दिया। इसलिए रामानंद का मंत्र (ॐ राँ रामाय नमः) रामानुज के मंत्र से भिन्न है इसी कारण से उनका मत 'वैरागी वैष्णव' कहलाता है।

रामानंद ने रामानुज के मत को स्वीकार करके भी उसकी नई व्याख्या की। रामानुज के तीन तत्त्वों को मानकर कहा गया है कि राम ईश्वर, सीता प्रकृति और लक्ष्मण जीव के प्रतीक हैं। 'श्री सम्प्रदाय' के लक्ष्मीनारायण रामावत सम्प्रदाय में सीताराम बन जाते हैं। रामानंद ने भक्ति को ही मुक्ति का प्रधान साधन माना है। भक्ति के क्षेत्र में उन्होंने

---

1 रिजली— Peoples of India P. 126

2 सं०डा० धीरेन्द्र वर्मा— हिन्दी साहित्य कोश, पृ. ६४८

3 . H. Westcott—Kabir and the Kabir Parnth,P. 90

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऊँच नीच और जाति-पाँति के भेदभाव का विरोध किया। उनके मतानुसार तो—

"जात-पांत पूछे नहीं कोई।
हरि को भजे सो हरि का होई॥"

जब यवन कादम्बिनी हमारे सांस्कृतिक सूर्य को आच्छन्न कर तिरोहित करने का प्रयास कर रही थी उस समय रामानंद का आविर्भाव प्रभंजन की भांति हुआ और उसने केवल कादम्बिनी को ही छिन्न-भिन्न नहीं किया बल्कि सांस्कृतिक आलोक नव प्रभा से जगमगा उठा। वैसे उत्तरी भारत में भक्ति प्रसार में वल्लभाचार्य का महत्व भी कम नहीं पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि रामानंद ने उस भक्ति का वीज-वपन किया था जो आगे चलकर एक वट वृक्ष की तरह व्याप्त होगया।

रामानंद ने राम का जो स्वरूप लोगों के समक्ष रखा उसने निराश हिन्दू जाति में नवीन आशा का संचार किया। उन्होंने अनुभव किया कि अब लक्ष्मी और नारायण जनता के हृदय में वह विश्वास उत्पन्न न कर सकेंगे जो उस परिस्थिति में नितान्त आवश्यक था। भगवान् के अनन्त ऐश्वर्य के साथ उनके अनन्त शौर्य का प्रदर्शन आवश्यक था। अतः स्वामी रामानन्द ने भगवान् राम के स्वरूप का प्रतिपादन किया। उनके राम परम पुरुष हैं। दशरथ-नन्दन होते हुए भी उनकी शक्ति अपार है।

रामानंद ने हिन्दुओं के आन्तरिक कलह को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया। उनके द्वारा प्रस्तुत राम का स्वरूप इतना लोकप्रिय हुआ कि समस्त उत्तरी भारत में राम नाम की गूंज सुनाई पड़ने लगी। कई अन्य सम्प्रदायों ने अपनी अलग सत्ता न रखते हुए अपने को रामावत संप्रदाय में समाविष्ट कर दिया। इसमें किञ्चित् भी सन्देह नहीं कि कवीर पंथ, रैदासी आदि सम्प्रदाय रामानन्द से प्रभावित थे। उन्होंने विभिन्न जातियों के लोगों को अपना शिष्य बनाया। अपनी पावन वाणी से विशृंखलित हिन्दू समाज को संगठित कर एक नवीन संदेश देने वाले महात्मा तुलसीदास भी रामानन्द के विचारों से काफी प्रभावित हैं।

रामानन्द की शिष्य परम्परा

भक्तमाल[1] में रामानंद के शिष्यों के नाम इस प्रकार हैं:—

(१) अनन्तानन्द (२) कवीर (३) सुखा (४) सुरसुरा (५) पद्मावति (६) नरहरि

[1] नामादास—भक्तमाल (भक्तिसुधास्वादतिलक), पृ. २८२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(७) पीपा (८) भावानन्द (९)रैंदास (१०)धना (११) सेनै (१२) सुरसुर की घरहरि।

अग्रस्वामी कृत 'रहस्य त्रय' की संस्कृत टीका के जो साढे चार श्लोक रूपकलाजी ने भक्तमाल के भक्तिसुधास्वादतिलक (पृ.२८४-८५) पर उद्‌धृत किये हैं उनमें सुरसरी देवी का नाम नहीं है तथा योगानंद व गालवानंद दो नये नाम और मिलते हैं। श्री योगानंदजी के लिए तो रूपकलाजी ने ही टिप्पणी में संकेत दे दिया है कि वे श्री अनन्तानंदजी के शिष्य हैं। पर शेष सभी को रामानंद का शिष्य मानने में विद्वान् सहमत नहीं हैं। डा. रामकुमार वर्मा[1] ने 'रहस्य त्रय' के श्लोकों में नामांकित सभी व्यक्तियों को रामानंद के शिष्य माना है। श्री परशुराम चतुर्वेदी[2] सेन नाई,कबीर,पीपाजी, रैंदास एवं धन्ना को तो रामानंद का शिष्य मानते ही नहीं, साथ ही उन्होंने भवानंद, सुरसुरानंद एवं सुखानंद के नामों के अतिरिक्त अन्य नामों के सम्बन्ध में भी सन्देह प्रकट किया है। श्री बलदेव उपाध्याय[3] इसी मत का समर्थन करते प्रतीत होते हैं। इसके विपरीत परम्परा तो कबीर को रामानंद का शिष्य मानती ही है, श्री वेस्टकोट[4] ने भी उन्हें रामानंद का शिष्य स्वीकार किया है। इधर जो नई शोधकृति'राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय' प्रकाशित हुई है, उसमें भी रामानन्द को कबीर का गुरु कहा गया है।[5]

रामानन्द की शिष्य परम्परा में सगुण और निर्गुण दोनों ही धाराओं के अनुयायी थे। एक ओर कबीर ने राम नाम अपना कर भी उसे रामानन्द के दाशरथी राम से भिन्न बताया:—

दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना॥

तो दूसरी ओर स्वामी अनन्तानन्द ने राम के सगुण रूप की भक्ति का प्रसार किया। इस प्रकार रामानन्द के शिष्यों द्वारा ही उत्तरी भारत में सगुण और निर्गुण ब्रह्म को लेकर दो धाराएं प्रवाहित की गयीं। अलखिया सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री लालगिरि कबीर आदि निर्गुण सन्तों की परम्परा में हैं।

---

[1] डा. रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. ३१७
[2] परशुराम चतुर्वेदी—उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ. २२४
[3] बलदेव उपाध्याय—भागवत सम्प्रदाय, पृ. २६८
[4] G. H. Westcott—Kabir and the Kabir Panth, P. 6
[5] डा. भगवतीप्रसाद सिंह—राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ. ६५

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय २

लालगिरि जी की जीवनी

अलखिया सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री लालगिरि का जन्म राजस्थान के चुरु जिले में सुलखणिया नामक ग्राम में हुआ था। इनके माता-पिता के सम्बन्ध में इतना ही ज्ञात हुआ है कि वे चमार जाति के थे। श्री लालगिरि के जन्म की तिथि व संवत् निश्चित नहीं है। इनका बचपन का नाम कुछ भिन्न रहा होगा। पाँच वर्ष की आयु में इनको एक नागा साधु अपने साथ ले गया और इन्हें अपना शिष्य बना लिया। उसी ने इनका नाम 'लालगिरि' रखा।[1] वैसे दशनामी[2] साधुओं में गिरि भी एक हैं पर लालगिरि के गुरु का सम्बन्ध इनमें से किसी से भी नहीं था। पॉउलेट[3] के अनुसार इन्हें अपने साथ ले जाने वाला साधु सैनिक नागा था। इससे अनुमान होता है कि वह 'दादू पंथ' का अनुयायी रहा होगा क्योंकि दादू पंथ के उप सम्प्रदायों में से एक— नागा जमात के अनुयायी— शस्त्र भी रखते हैं।[4]

जनश्रुति है कि श्री लालगिरि का गला बहुत अच्छा था। ये अपने पिता के साथ पास के एक गाँव भुकरेड़ी में पड़ बाँचने गये। हरिद्वार जाता हुआ नागा साधुओं का एक दल उसी गाँव में ठहरा हुआ था। रात्रि के समय जब लालगिरि और उनके पिता पड़ गा (बाँच) रहे थे तो नागा साधु भी वहाँ आगये। लालगिरि की आयु उस समय १५ वर्ष की थी। वे नागा साधुओं से प्रभावित हो गये और उन्होंने उनके साथ जाने का निश्चय कर लिया। उन्होंने पड़ के पीछे सोने का बहाना किया और फिर अन्धेरे में ही उठकर नागा साधुओं में मिल गये। सवेरे के प्रकाश में पिता ने पुत्र को गायब पाया। कुछ गाँव वालों को साथ लेकर उन्होंने पद-चिन्हों से लालगिरि को जा पकड़ा। उनके पिता तथा दूसरे लोगों ने उन्हें रोकना चाहा पर वे अपने निश्चय पर अटल रहे।

---

1 मुंशी सोहनलाल—तवारीख राज श्री बीकानेर, पृ. ५७

2 दशनाम (i) तीर्थ (ii) आश्रम (iii) वन (iv) अरण्य (v) गिरि (vi) पर्वत (vii) सागर (viii) सरस्वती (ix) भारती (x) पुरी

3 पी. डब्ल्यू. पॉउलेट—गजेटियर आफ बीकानेर स्टेट, पृ. ६०

4 दादू सम्प्रदाय का संक्षिप्त परिचय—सं. मंगलदासजी स्वामी, पृ. ६०

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहा जाता है कि १०-१२ वर्ष बाद वे अपने गाँव सुलखणिया वापस लौट आये और साधु के रूप में रहने लगे। पर विद्वानों ने लालगिरि के जीवन की इस घटना का वर्णन भिन्न रूप में किया है। पॉउलेट[1] के अनुसार ५ वर्ष की आयु में ही उन्हें नागा साधु ले गया था। १५ वर्ष बाद जब वह साधु सुलखणिया लौटा तो यह ज्ञात कर, कि लालगिरि की जाति चमार है, उसने उनका परित्याग कर दिया।[2]

लालगिरि कुछ समय तक अपने गाँव में रहे और बाद में बीकानेर चले आये। पॉउलेट और मुंशी सोहनलाल ने संवत् १८८६ में उनका बीकानेर आना लिखा है। ओझा जी ने लिखा है कि संवत् १८८७ में लालगिरि बीकानेर आये। यदि लालगिरि का ५ वर्ष की आयु में नागा साधु के साथ जाने व १५ वर्ष बाद लौटने की बात को सत्य मान लें तो उनका जन्म उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में संवत् १८६६ से पूर्व कोई संवत् मानना होगा।

बीकानेर आने के बाद श्री लालगिरि किले के बाहर झोंपड़ी बनाकर रहने लगे। पॉउलेट, ओझा जी आदि ने लिखा हैं कि बीकानेर आकर लालगिरि किले के पश्चिमी फाटक के पास कुटी बनाकर रहने लगे। पर यह कथन उचित नहीं। वास्तव में उनकी झोंपड़ी किले के पूर्वी फाटक के पास कुछ दक्षिण की ओर थी। इस स्थान पर अब भी लाल पत्थर लगा हुआ है। आषाढ़ की पूर्णिमा को लालगिरि की पुण्यतिथि (बरसी) के अवसर पर अलखिया सम्प्रदाय के अनुयायी यहाँ नारियल आदि चढाने आते हैं।[3]

लालगिरि लगभग १२ वर्ष बीकानेर में रहे। उन्होंने लोगों को अपने सिद्धान्तों का उपदेश देना आरम्भ किया। बीकानेर के बहुत से लोग उनके अनुयायी बन गये। इनमें लच्छीराम राखेचा (लच्छीगिरि), उदयराम हर्ष (उदयगिरि), देवकिसन गाँधी (देवगिरि), टीकमचन्द आचार्य (टीकमगिरि) आदि मुख्य हैं। बीकानेर का तत्कालीन शासक महाराजा रत्नसिंह भी उनके विचारों से बहुत प्रभावित हुआ और उन्हें अपने साथ तीर्थयात्रा पर

---

[1] पी. डब्लू. पॉउलेट—गजेटियर आफ दी बीकानेर स्टेट, पृ. ६०

[2] श्री गौरीशंकर ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास, पहला भाग, पृ. १६ की पाद टिप्पणी संख्या १

[3] (क) पी. डब्लू. पॉउलेट—गजेटियर आफ बीकानेर स्टेट, पृ. ६०
(ख) मुंशी सोहनलाल—तवारीख राज श्री बीकानेर, पृ. ५८

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लेगया।[1]

वापस बीकानेर लौटने पर महाराजा ने लालगिरि को कुछ रुपये दिये जिनसे उन्होंने एक कुआं तो अपने जन्म-स्थान सुलखणिया में बनवाया और दूसरा कुआं बीकानेर में बनवाया जो अलखसागर के नाम से प्रसिद्ध है। बीकानेर वाले कुएं के निर्माण में श्री लच्छीराम राखेचा द्वारा काफी आर्थिक सहयोग मिला तथा अन्य लोगों ने भी धन प्रदान किया। कुएं का निर्माण कार्य संवत् १९०१ में आरंभ हुआ। मुन्शी सोहनलाल[2] ने लिखा है कि कुएं का कार्य संवत् १९०९ में सम्पूर्ण हुआ पर कुएं के उत्तर-पूर्व कोने में संवत् १९२४ का जो शिलालेख[3] है उसमें स्पष्ट उल्लेख है कि निर्माण कार्य संवत् १९२२ में पूरा हुआ। कुयें की चारों दिशाओं में सारण बनी हुई है। कुआं इतना चौड़ा है कि इसमें चारों दिशाओं में आठ जोड़ी बैल एक साथ ही आठ चरस पानी निकाल सकते हैं। इतना विशाल कुआं भारतवर्ष में अन्यत्र शायद ही कहीं हो। कुआं बनाने के लिए लाल पत्थर बीकानेर से १८ कोस दूर दुलमेरा नामक स्थान से ऊंटों पर लाये गये। कुआं बनाने के अतिरिक्त श्री लालगिरि ने एक अलख मठ भी बनवाया था जो बीकानेर के वर्तमान रेल्वे स्टेशन के सामने गंगाशहर रोड पर स्थित है।

लालगिरि ने सब पर यह प्रकट कर दिया था कि वे जाति के चमार हैं पर उनके शिष्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। एक दिन महाराजा रत्नसिंह लक्ष्मीनारायण जी के मन्दिर में दर्शन करने जा रहा था। लालगिरि ने उसको कहा कि मूर्ति पूजा में क्या रखा है, तुम अलख का स्मरण क्यों नहीं करते? महाराजा यह सुनकर अप्रसन्न हो गया। उसने लालगिरि की पुस्तक, जिसमें उनकी वाणी संग्रहीत थी, पानी में डुबो दी।[4] कहा जाता है कि महाराजा ने यह भी आज्ञा दी कि मस्तक पर गर्म लोहे का (कुत्ते के पंजे जैसा)

---

[1] श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा— बीकानेर राज्य का इतिहास, पहला भाग पृ. १९ की पाद टिप्पणी संख्या १

[2] मुंशी सोहनलाल—तवारीख राज श्री बीकानेर, पृ. ५८

[3] कुएं के पास के शिलालेख के निम्न शब्द द्रष्टव्य हैं:—

..........जद गुसांई जी महाराज सुं संवत् १९०१ मिती पोह शुदि १४ अलख मठ मै अरज हुई जद फुरमाई माघ वदि. ८ नै अलष सागर रो पावो दोपारै पुगो जी की वषत जो हाथ में हाजर हुवै जै सुं ही पावो मार दे जो तिको सरब काम चूकती संव्वत् १९२२ साल त्यार हुवो..............................

[4] पी. डब्लू. पॉउलेट—गजेटियर ऑफ बीकानेर स्टेट, पृ. ६१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निशान लगाकर लालगिरि को तुरन्त बीकानेर राज्य से निर्वासित कर दिया जाय। आज्ञा पालन के लिए लालगिरि को राज्य के दक्षिणी सीमान्त की ओर ले जाया गया। उस समय प्रचलित नियम के अनुसार सीमा पर निर्वासित व्यक्ति के मस्तक पर लोहे का गर्म निशान अंकित किया जाता था। इधर बीकानेर में महाराजा को रात्रि में भय लगा। उसकी रानी ने तो इसे यों ही स्वप्न का जंजाल कहकर टालना चाहा पर महाराजा ने कहा कि जो कुछ मैंने देखा है उसे मैं स्वप्न नहीं मानता। रात्रि में ही महाराजा ने अपने प्रमुख सलाहकारों को किले में बुलाया और अपने भय की सारी बात कही। सलाहकारों में कुछ व्यक्ति लालगिरिजी से प्रभावित थे। उन्होंने कहा कि यह लालगिरिजी का चमत्कार है अतः उनके मस्तक पर गर्म लोहे का निशान लगाने सम्बन्धी आज्ञा तुरन्त रद्द की जाय। महाराजा की आज्ञा से उसी समय दो घुड़सवार सीमा की ओर रवाना हुए।

लालगिरि के साथ में गये महाराजा के नौकर एक ऊंचे टीले पर बैठे हुए प्रभात होने की प्रतीक्षा कर रहे थे ताकि राजकीय आज्ञा का पालन किया जाय। अभी सूर्योदय नहीं हुआ था। धीरे धीरे पूर्व दिशा में लालिमा फैलने लगी। ऊषा का आगमन हुआ। राज्य कर्मचारी लालगिरि के मस्तक पर लगाने के लिए लोहा गर्म करने लगे। पर लालगिरि के मुख पर किसी प्रकार के भय का भाव न था। वे चुपचाप बैठे थे। उनकी मुद्रा गम्भीर थी। स्वर्ण-पुरुष प्राची में झांकने लगा। तपस्वी पर किये जाने वाले अत्याचार को देख उसका मुख क्रोध से जलने लगा। तभी कर्मचारियों ने टीले पर से देखा कि दो घुड़सवार अपने भालों पर सफेद कपड़ा बांधे उन्हीं की ओर दौड़े चले आ रहे हैं। लोह तप्त हो चुका था। पर आगन्तुकों की प्रतीक्षा में यह कार्य रोक दिया गया। थोड़ी ही देर में दोनों घुड़सवार पास आये। उन्होंने प्रधान को राजकीय मुहर लगी आज्ञा प्रदान की। इसमें निर्देश किया गया था कि लालगिरि के मस्तक पर गर्म लोहे का निशान (कुत्ते का पंजा) न लगाया जाय और उन्हें वैसे ही राज्य की सीमा से निर्वासित कर दिया जाय।

लालगिरि जयपुर चले गये और गलता में रहने लगे। वहाँ से उन्होंने अपने मतानुयायिओं को सन्देश भिजवाया कि वे लोग भगवां वेष धारण कर लें और जोगी बन जायें। बीकानेर में चारों ओर अलख अलख' की ध्वनि सुनायी पड़ने लगी[1] संवत् १९०८ में जब महाराजा सरदारसिंह गद्दी पर बैठा तो उसकी पासवान पार्वती ने अलखिया सम्प्रदाय

---

[1] मुंशी सोहनलाल—तवारीख राज श्री बीकानेर, पृ. ५८

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के विरुद्ध उसके कान भरे। उधर महाराजा के दीवान रामलाल द्वारकानी ने द्वेषवः लच्छीराम राखेचा की शिकायत की। महाराजा अलख मौला की गूंज से चिढा हुआ तं था ही, उसने आज्ञा निकाल दी कि अलखिया सम्प्रदाय के सब अनुयायियों को राज्य से निर्वासित कर दिया जाय। उस समय निर्बल आस्था के कुछ लोगों ने तो इस मत क त्याग कर दिया और पूर्व वेश त्याग कर गृहस्थ बन गये पर लच्छीराम अपने सिद्धांत प अटल रहा। वह राज्य से निर्वासित कर दिया गया और अपने गुरु लालगिरि के पा जयपुर जाकर रहने लगा। पर जब उसका पुत्र मानमल दीवान बना तो उसने अपं पिता को वापस बीकानेर बुला लिया।[1] ओझाजी ने तो लालगिरि के भी बीकानेर लौटं की बात लिखी है।[2] पर न तो इसका कोई प्रमाण ही है और न अन्य विद्वानों ने इसक समर्थन किया है। गलता में लालगिरि की समाधि बनी हुई है। इससे यह निष्क निकलता है कि निर्वासन के बाद वे जयपुर में ही रहे और वहीं उनकी मृत्यु हुई।

---

[1] पी. डब्लू. पॉउलेट—गजेटियर आफ दी बीकानेर स्टेट, पृ. ६१

[2] श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास, पहला भाग, पृ. १६ की पाद टिप्पणी संख्या १

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय ३

अलखिया सम्प्रदाय

श्री लालगिरि के इस मत को पॉउलेट, मुंशी सोहनलाल व ओझाजी ने 'अलखगिर' या 'अलखगिरि' नाम दिया है। ऐसा विदित होता है कि पॉउलेट ने 'अलखगिरि' शब्द का प्रयोग किया और बाद के दोनों इतिहासकारों ने उसका अनुकरण किया। श्री परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है कि अपने प्रवर्तक के नाम पर चलने वाले तो पंथ कहलाते हैं जैसे कबीर पंथ, नानक पंथ, दादू पंथ, बावरी पथ आदि तथा अन्य विशेषताओं के आधार पर नाम ग्रहण करने वाले सम्प्रदाय कहलाते हैं जैसे निरंजनी-सम्प्रदाय, रामस्नेही-सम्प्रदाय आदि।[1] यद्यपि इस सिद्धांत के अपवाद भी मिलते हैं तो भी लालगिरि के मत को 'अलखिया सम्प्रदाय' कहना ही अधिक उचित है।

प्रचार सीमा

अलखिया सम्प्रदाय के अनुयायी प्रधानतः बीकानेर और उसके आसपास ही पाये जाते हैं पर इस मत को मानने वाले व्यक्ति कहीं कहीं अन्यत्र भी पाये जाते हैं। बीकानेर डिवीजन के निकटवर्ती शेखावाटी क्षेत्र में स्त्रियां रातीजगे (रात्रि जागरण) में गाती हैं :—

बोलो भाई लालगुरु की वाणी
सकल जग जाणी

चाहे लालगिरि की वाणी का प्रचार सर्वत्र न हुआ हो पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि पश्चिमी राजस्थान व पंजाब के निम्न वर्ग के लोगों—विशेषतः चमार जाति के लोगों में उनकी वाणी का काफी प्रचार है। श्री परशुराम चतुर्वेदी ने "उत्तरी भारत की सन्त परम्परा" में किसी 'अलखधारी' मत का उल्लेख करते हुए लिखा है—"भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेशों में और विशेषकर इधर अम्बाला जिले की ओर आजकल एक पंथ अलखधारियों का प्रचलित दीख पड़ता है, जो अपने को किसी लालबेग के अनुयायी कहा करते हैं। ये लोग अधिकतर ढेढ अर्थात् चमार जाति के होते हैं और लालबेग को

[1] उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ. ३८८ की पाद टिप्पणी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ये लोग शिव का अवतार मानते हैं। ये मूर्ति-पूजा में विश्वास नहीं करते बल्कि कि अलख व अगोचर तत्व का ध्यान किया करते हैं। इनके अनुसार दृश्यमान संसार अतिरिक्त कोई परलोक-जैसा स्थान नहीं है, जहां पर कोई धार्मिक जीवन व्यतीत कर वाला मनुष्य मरणोपरान्त जा सकता है। इनके लिए यहीं पर सब-कुछ है और यहीं प अहिंसा, परोपकार आदि के साथ सात्विक जीवनयापन करना सबका उद्देश्य हो चाहिए। स्वर्ग वा नरक का ध्यान छोड़कर आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने वा यहीं परमानन्द वा मोक्ष प्राप्त कर सकता है।[1]

अनुमान होता है कि श्री परशुराम चतुर्वेदी द्वारा वर्णित अलखधारी और लालगिरि का 'अलखिया-सम्प्रदाय' वास्तव में एक ही हैं। दोनों के प्रवर्तकों के नाम समा हैं, दोनों के सिद्धांत समान हैं और दोनों के अनुयायी अधिकतर चमार जाति के लोग हैं

अलखिया सम्प्रदाय और लालगिरि के बारे में आचार्य क्षितिमोहन सेन ने विवरण दिया है वह इस प्रकार है[2]:—

"यदि हम लालबेग या लालगिरि का, जो अपने आपको अलखनामी य अलखगिर कहते हैं, नाम छोड़ दें तो चमार जाति के साधकों का वर्णन अधूरा रह जात

---

[1] परशुराम चतुर्वेदी—उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ. १०२ तुलनीय मुंशी सोहनला द्वारा लालगिरि के मत का विवरण:— यह शख्स बुत परस्ती की मज़म्मत करता था—औ अपने मुअ़तक़िदों को अलख की तलक़ीन होती थी और अलख अलख पुकारना दाखि पूजा था—खैरात करना मजहब का बहुत बड़ा उसूल था—गोश्त खाना और जीव हिं ममनूअ़ थी—नफ़्स खुशी के लिए इबादत करना मुफीद रक्खा गया—और इन सब अ का अजर इसी जिंदगी में बतलाया—पाकीज़गी और बिला किसी खलल के बेलौस हो ध्यान करने से परमानंद हासिल होता है—आयन्दा कोई हालत नहीं—बहिश्त और दोज़ यानी खुशी व मुसीबत अन्दरूनी हैं—बेरुनी हालात को आत्मा की खुशी से कुछ सरोका नहीं—तमाम जिस्म फ़ानी है आदमी में कोई हिस्सा ऐसा नहीं है कि जिसको फ़ न होवे—अय्याम जिन्दगी में नेकी और अमर के साथ बसर करना बक़ाइ नाम के वा काफी है इसलिए नेकी करना अमर लाज़िमी है।

—तवारीख राज श्री बीकानेर पृ. ५७-५

[2] Mediaeval Mysticism—Page 128

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। उनके नाम के अन्त में 'गिर' शब्द शंकर द्वारा प्रवर्तित संन्यासियों की प्रसिद्ध दस श्रेणियों में से एक 'गिरि' के साथ तुलनीय है। अलखगिरि वालों के अनुसार उनका सम्प्रदाय तुलसीदास से भी पुराना है और उनका बीकानेर में काफी प्रभाव है। वे किसी मूर्ति की पूजा नहीं करते और अलख ब्रह्म का ध्यान करते हैं और उसे अपने भीतर ही पाने का प्रयत्न करते हैं। उनके लिए अहिंसा, परोपकार और सात्विक जीवन ही धर्म है। उनके मतानुसार यदि कोई परलोक की चिन्ता छोड़कर साधन-पथ पर आरूढ रहे तो उसे यहीं—इसी लोक में—परमानन्द की प्राप्ति हो सकती है। स्वर्ग या नरक का विचार मिथ्या है क्योंकि ये दोनों प्रत्येक व्यक्ति के भीतर हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी साधना से इसी जीवन में पूर्णता प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। मानव जीवन का चरम लक्ष्य साधना द्वारा इस संसार में ही पूर्णत्व प्राप्ति होना चाहिए। इस सम्प्रदाय के लोग तथाकथित उच्च वर्णों की श्रेष्ठता स्वीकार नहीं करते। इस दृष्टि से यह सम्प्रदाय उड़ीसा के कुंभीपतियों की तरह है जो अधिक पुराना नहीं है। मन्दिर-प्रवेश के सम्बन्ध में उनका कहना है कि मन्दिरों जैसे तुच्छ स्थानों पर जाने से मनुष्य सत्य से गिर सकता है। इस सम्प्रदाय के साधु एक टोपी और मोटे सूत का बना चोगा पहनते हैं और एक दूसरे का 'अलख कहो' कहकर अभिवादन करते हैं। वे बहुत ही शान्ति से भिक्षा माँगते हैं और कुछ न देने पर भी चुप-चाप चले जाते हैं। शान्त प्रकृति के शुद्ध योगी के रूप में लोग उनका सम्मान करते हैं। उनका कहना है कि मन, वचन, कर्म और धन व अन्य ढंग से दूसरों की सहायता करना हरेक का कर्त्तव्य है। इस सम्प्रदाय के लोग उत्तरी-पश्चिमी भारत में रहते हैं और अपने गुरु लालबेग को शिव का अवतार मानते हैं। स्वर्ग के लोभ या किसी भावी सुख की कामना से उन्हें घृणा है। सात्विकता, मौन और मन के संयम से इसी जीवन में परमानन्द की प्राप्ति उनका आदर्श है। उनके लिए वर्तमान ही सर्वश्रेष्ठ है और उनकी साधना का लक्ष्य वर्तमान के लबालब प्याले का पान करना है जिसमें चिरन्तनता से निकलकर परमानन्द का रस एकत्रित होता है।"

अलखिया सम्प्रदाय के अनुयायी गृहस्थ और साधु दोनों ही हैं। गृहस्थ सामान्य कपड़े पहनते हैं तथा इस मत के साधु भगवां वस्त्र धारण करते हैं। ओझाजी ने लिखा है—"अलखिया मत के अनुयायी बहुधा साधु के वेष में रहते हैं और भिक्षा से जीवन-निर्वाह करते हैं, परन्तु कई गृहस्थ भी हैं। ये जैन तीर्थंकरों की उपासना तो नहीं करते पर अपना धर्म उससे मिलता-जुलता होने के कारण अपने को जैनों की शाखा मानते हैं

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और जैन तीर्थंकरों का आदर करते हैं।"[1] यह धारणा वास्तव में गलत है। ओझाजी को संभवतः यह भ्रान्ति इसलिए हुई कि लालगिरि का प्रधान शिष्य लच्छीराम राखेचा जैन था और उसके वंशज आज तक जैन तीर्थंकरों का आदर करने के साथ अपने को अलखिया सम्प्रदाय का भी अनुयायी बताते हैं और बड़े आदर से लालगिरि की वाणी का पाठ व पूजा करते हैं।

अलख मौला

अलखिया सम्प्रदाय के लोग परस्पर मिलने के समय 'अलख मौला' कह कर अभिवादन करते हैं। प्रसिद्ध वेदान्ती सेठ रामगोपालजी मोहता का मत है कि अलख मौला का अर्थ है अलख मांयला अर्थात् ब्रह्म अलक्ष्य है और वह हमारे भीतर है। अलखिया सम्प्रदाय के ही अनुयायी प्रसिद्ध महात्मा श्री योगानन्द जी महाराज का कहना है कि मौला न होकर यह शब्द मोहलो है जिसका अर्थ है मिलाप। उन्होंने योगेश्वर बनानाथजी की वाणी में आये 'मोहलो' शब्द का उल्लेख किया जो इस प्रकार है:—

"करणां है सो करले रे साधो सबके मिलयो मोहलो"

कुछ लोगों ने इस शब्द पर व्यंग्य करते हुए इसे मिथ्या कहा है:-

डरते ढेढ बेगार सें लियो भेष को ओलो
अलख नाम तो सत्त है,झूठो नाम मोहलो।

वास्तव में ये दो शब्द हैं—अलख और मौला। राजस्थान में नाथपंथियों का गहरा प्रभाव रहा है। राजस्थान के लोक-जीवन और विचार प्रवाह को गोरख और नाथपंथ ने बहुत दूर तक प्रभावित किया है। राजस्थानी साहित्य की अनेक रचनाओं से इसकी पुष्टि होती है।[2] अलख शब्द इसीलिए यहाँ के वातावरण में काफी घुल-मिल गया है। यहाँ की जनता ने प्रायः किसी भी ऐसे सिद्ध-साधकों को स्वीकार नहीं किया जो गुरु गोरखनाथ की शिष्य परम्परा में नहीं माने गये हों।[3] संभवतः इसी विश्वास के कारण लालगिरिजी ने अपना अलग सम्प्रदाय चलाकर भी नाथपंथियों के ही अलख शब्द का प्रयोग किया हो। अलक्ष्य ब्रह्म के लिये यह शब्द अन्य कई मतों व सम्प्रदायों द्वारा भी प्रयुक्त हुआ

---

1 श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा—बीकानेर का इतिहास, पहला भाग, पृ. १६ की पाद टिप्पणी

2 डा. हीरालाल माहेश्वरी—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ. २७४-७५

3 श्री अक्षयचन्द्र शर्मा—साहित्य-सन्देश (सन्त साहित्य विशेषांक) पृ. ६०

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है । 'मौला' शब्द अरबी का है और यह भी ईश्वरवाचक है । मध्ययुग के अनेक सन्तों ने अपने सम्प्रदायों के सिद्धान्तों में हिन्दु-मुस्लिम ऐक्य का ध्यान रखा है यद्यपि कुछ विद्वान् यह मानते हैं कि सन्तों का उद्देश्य हिन्दू-मुस्लिम एकता नहीं था।[1] श्री लालगिरि भी इस सन्त परम्परा से अनभिज्ञ न थे । यद्यपि उनके समय में भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी का राज्य जम चुका था पर वायुमंडल में हिन्दु-मुस्लिम एकता का स्वर गूंज रहा था । हिन्दु और मुस्लिम दोनों ही समान शत्रु को पहचान कर उससे मुक्ति के लिए संघर्ष की तैयारी कर रहे थे । अतः यह कोई आश्चर्य की बात नहीं यदि लालगिरि ने दोनों जातियों में प्रेम और सहयोग उत्पन्न करने के लिए दोनों ही धर्मों से एक एक शब्द (हिन्दू धर्म का अलख व मुस्लिम धर्म का मौला) लेकर अपने मत का प्रचार किया हो ।

सिद्धान्त

श्री लालगिरिजी ने ईश्वर क लिए अलख, निरंजन, साहिब, पुरुष, हरि आदि शब्दों का प्रयोग किया है । उन्होंने ईश्वर का जिस प्रकार वर्णन किया है उसका स्वरूप नाथपंथियों से मिलता-जुलता है । वह साहिब शून्य में है ।[2] उसकी व्याप्ति सर्वत्र है, पर उसे कोई बिरला ही पहचान सकता है ।[3] वह रूप-रंग-हीन है ।[4] वह मन-वचन से परे है । पवन का भी वहां प्रवेश नहीं है ।[5] उसका न आदि है, न मध्य और न अन्त । वह न साथ है न अलग ।[6] वह निराकार और निर्लेप है । वह घट-घट में है ।[7] उसकी पहचान गुरु के द्वारा ही संभव है ।[8] सद्गुरु ही शब्द ब्रह्म का ज्ञान कराता है ।[9] इस प्रकार

---

1 डाक्टर पी. सरन—दि जर्नल आफ़ दी युनाइटेड प्रोविंस हिस्टारिकल सोसाइटी, भाग १६ अंक १-२, पृ.१२५

2 साहिब दरसै सुंन मैं

3 रुंम रुंम व्यापक सकल (कोई) विरला करै पिछांण

4 प वरण कुछ नांहि

5 मन वांणी पूगै नहीं पवन पौहोंचै नांहि

6 आद अंत मध नांहि नही कां भेला न्यारा

7 निराकार निरलेप सकल पूरण सांई

8 चौडे चौक पड़ौ माल गुरु । जांणीये

9 खोजत खोजत सतगुरु मिळिया, शब्द उजाला कीन्हा रे

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लालगिरिजी ने ईश्वर का निराकार रूप स्वीकार किया है। मध्य युग के आध्यात्मिक वातावरण से प्रभावित होकर उन्होंने नाम स्मरण[1] और सत्संगति[2] पर भी जोर दिया है। राजस्थान और पंजाब में नाथपंथियों का प्रभाव अधिक रहा है अतः यह स्वाभाविक ही है कि लालगिरि की साधना-पद्धति में भी योगियों की शब्दावली ग्रहण की गयी है। उन्होंने सुरति निरति दोनों का उल्लेख किया है और सहस्रार चक्र में ब्रह्म का निवास माना है।

सुरत निरत मन पवना दृढ़ कर, करया चतुर्दश भेळा रे
सुन सा सहर गिगन सा किहला, जहां वो पुरुष अकेला रे

उन्होंने जीव को ब्रह्म का ही अंश माना है। आत्मा और परमात्मा दोनों एक हैं।[3] पर अज्ञान के कारण जीव को इस सत्य की पहचान नहीं होती। घड़े और नदी में एक ही प्रकार का जल है पर घड़े का आवरण होने के कारण दोनों एक नहीं हो सकते। ज्योंही घड़ा फूटता है, दोनों जल एकाकार हो जाते हैं। इसी प्रकार ज्योंही माया का आवरण दूर होता है त्योंही जीव ब्रह्म में लीन हो जाता है।[4] कबीर ने भी यही बात कही है।

जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तत कियो गियानी॥

संसार मिथ्या है। इसमें यमराज से भय भी अज्ञानजन्य है। जिस प्रकार माता अपने बच्चे को वश में करने के लिए और अपनी आज्ञानुसार कार्य कराने के लिए डराती है उसी प्रकार ब्राह्मण भी अपने स्वार्थ के लिए संसार को यमराज का भय दिखाते हैं। ओस की बूंद को मोती समझना अज्ञान है। रेगिस्तान में शरद् ऋतु में सूर्योदय से पूर्व दिखाई पड़ने वाला गन्धर्व नगर मिथ्या है। खरगोश के सिर पर सींग का होना असंभव है। न स्वर्ग है, न नरक है। यहां न यम की वेड़ी है और न काल की फांसी। यहां तो एक ही ब्रह्म तत्व है। यह सब जग अलख के भीतर है। इसकी प्रतीति सद्गुरु की शरण में जाने से ही संभव है। तभी भव का भ्रम भागेगा। तभी आवागमन का चक्कर मिटेगा। श्री लालगिरिजी ने इस प्रकार जग के असत् रूप का बहुत स्पष्ट और सरल

---

[1] सन्तो लो रे हरी को नामा

[2] हमारे अलख लखो मेरा माई, आके संगत के माई

[3] एकंहि जीव ब्रह्महि एक हि

[4] ज्यूं घट फूटा दरिया मांहि, जल का जल में वसा रे

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शब्दों में वर्णन किया है :—

जमराजा से हाऊ रे सन्तो, जम राजा से हाऊ।
झूठे विप्र डरावत जग को, बाल डरावत माऊ ॥
ज्यों शुशिये शिर शृंग कहीजे, यह न शास्त्र अनुकूला।
ज्यों जमराज मिथ्या जग मांही, भ्रम करि दुनिया भूला ॥
ज्यों बन्ध्याघर पुत्र कही जे, ज्यों मृगतृष्णा भूला।
ओस बूंद मोती जग मिथ्या, मिथ्या भूत वघूला ॥
गन्ध्रप नगर सीतगढ़ किल्ला, को कुण वास वसाणा।
ऊगा सूर तेज जब प्रगटा, देखत दृष्टि बिलाणा ॥
ना कोई सरग नरक नहि जाणा, ना कोई जूंण चौरासी।
ना धर्मराज न जम की वेड़ी, नहीं काल नहि फांसी ॥

एक अन्य पद में उन्होंने वट-बीज का उदाहरण देकर सृष्टि की उत्पत्ति को उलट बांसी में चित्रित किया है :—

अवधू वड का बीज विस्तारा, कोई जाणे जाणनहारा।
आपो आप और नहि कोई, आपो आप पसारा रे अवधू ॥
भाई भया भतीजा मेरे, बाप भया घर वाला।
दादा है घर पोता मेरे, सुसरा है घर साला ॥
भार्या है घर पुत्री मेरे, सासू भई लुगाई।
भोजाई भतीजी मेरे, साढू साली जाई ॥
नाना है घर मामा मेरे, नानी मेरी माई।
मामी मेरी मामा जाया, माता के घर बाई ॥

समाज में फैले हुए ढोंग आदि का भी उन्होंने कड़े शब्दों में विरोध किया है। पंडित, मौलवी और यति तीनों ने ही धर्म के नाम पर दुकानदारी चला रखी है। पंडित वेद की दुहाई देकर हिन्दुओं को वश में रखता है, मुल्ला मस्जिद पर चढ़कर बांग देता है और मुसलमानों पर अपना प्रभाव जमाये रखता है, यति अपने धर्मानुयायिओं को गाकर उपदेश देता है। पर लालगिरिजी के अनुसार तो दुनियां की बुद्धि उल्टी है जो इन तीनों द्वारा धर्म के नाम पर की जाने वाली ठगी को नहीं पहचानती। राजस्थान में प्रचलित बाबाजी की पूजा में जो ठग– विद्या है उसका पर्दाफाश करते हुए लालगिरिजी ने उन

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोगों को भोंदू कहा है जो पुजारिन के धोखे में आकर बायांजी की पूजा करते हैं । वह (पुजारिन) ठगिनी है जो मिथ्या रूप से आवेश में आकर अपने में देवी की छाया आने का बहाना करती है और फिर जोर-जोर से बोलती है कि जिसके सम्बन्ध में प्रश्न पूछा जा रहा है उस पर मेरे अनिष्ट की छाया है । वास्तव में वह धोखा दे रही है और उसके जाल में केवल मूर्ख ही फसते हैं । उन्होंने मूर्ति-पूजा का खंडन भी उसी तीव्रता के साथ किया है । भैरूं तो खान का पत्थर है । वह भला किसी का कार्य क्या सिद्ध करेगा । उस पर चमकीले मालीपाने लगाना व तेल सिन्दूर चढ़ाना व्यर्थ है । गीत गाते हुए इस पत्थर को जो शराव और मांस का भोग लगाया जाता है वह निश्चय ही अक्ल का अभाव है।

लालगिरिजी ने आडम्बरों का विरोध निर्भीकता से किया है मूर्तिपूजा का खंडन उन्होंने कबीर के समान ही किया है । जैसा उनकी जीवनी से विदित होता है, उन्होंने बीकानेर के राजा को भी मूर्ति-पूजा के लिए टोक दिया था, जिसके कारण उन्हें राज्य से निर्वासित होना पड़ा । उन्होंने तरह–तरह के कष्ट सहे पर सत्य को न छोड़ा । जिस सत्य की अनुभूति उन्होंने की उसे उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा । वर्तमान वैज्ञानिक और बौद्धिक युग ने हमारी आध्यात्मिक मान्यताओं को झकझोर दिया है पर मध्य युग के सन्तों ने अपनी वाणी द्वारा जिस सत्य का उद्‌घोष किया वह शाश्वत है । उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि सन्त किसी की परवाह नहीं करता । ब्रह्मा, विष्णु, महेश तो क्या, वह मुक्ति की भी गरज नहीं रखता:—

गरज नांहि बरमा अरू बिसनऊ की गरज नांहि
गरज नांही संभू ईस गिरजा गणेस की
गरज नांही इन्द्र अरु कुवेर हूं की गरज नांही
गरज नांही धरमराय वरण अरु सेस की ।
गरज नांही रांणा अरू राव हू की गरज नांहि
गरज नांही दुनिया मीर सेख ऊ नरेस की ।
कहत है गुसांई लाल और सिष्ट कोण माल
संत हू न राखे गरज मुक्त हूं से वेस की

मध्य युग में चाहे हिन्दू-मुस्लिम एकता की समस्या न रही हो पर उस समय सदियों की दासता ने भारतीय जनता की आत्मा को जड़ बना दिया था । लालगिरि जैसे सन्तों ने जनता की इसी सुप्त आत्मा को जगाने का प्रयास किया है । उनकी वाणी में इसी बात का सन्देश है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अलखिया सम्प्रदाय

खण्ड २

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लालगिरि जी की वाणी

साहिब दरसै सुंन मैं अजर अमर निरवांण
रूंम रूंम व्यापक सकल (कोई) विरला करै पिछांण
विरला करै पिछांण सोइ जिन सतगुर भेट्या
करम करया सब दूर सार गहि आपा मेट्या
कहै गुसांई लाल कीया जिन पांचू गायब
अजर अमर निरवांण सुंन मैं दरसै साहिब ।। १ ।।

ॐ सोई हंस है सोहं हंसा सोय
यह अच्छर ता ऊपरै अर्द्ध–चंद्रवत् जोय
अर्द्ध–चन्द्रवत् जोय भरया घर सुंना मांही
अजर अमर निरवांण निरंजण सोहं सोई
कहै गुसांई लाल पिछांणे विरला कोई
सोहं हंसा सोय हंस है उ हं सोई ।। २ ।।

यो ही यो ही अलष है धरा गिगन कै बीच
स्वेत फटिक मणसार सा ना कोई ऊंचा नीच
ना कोई ऊंचा नीच अखंड व्यापक जग सारै
बाहिर भीतर मांहि नहि कोई तारै मारै
कहै गुसांई लाल नहीं जहां एको वोई
करो संत परतीत अलष है यो ही यो ही ।। ३ ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यो ही यो हो अलष है है है ना ही मांहि
वो हो नेडा दूरा घणा रुप वरण कुछ नांहि
रुप वरण कुछ नांह नहीं कोई वार न पारा
आद अंत मध नांहि नहीं कोई मेला न्यारा
कहै गुसांई लाल सत है सो ही सो ही
रुप वरण कुछ नांहि अलष है यो ही योहो ॥ ४ ॥

यो ही योहो अलष है मैं मैं तूं तूं मांहि
मन वांणी पूगै नहो पवन पोहौंचे नांहि
पवन पोहौंचे नांहि रूप रंग नांही नांहो
निराकार निरलेप सकल घट पूरण सांई
कहै गुसांई लाल दूर कर दुरमत दो ही
मैं मैं तूं तूं मांहो अलष है योही योहो ॥ ५ ॥

यो ही यो ही अलष है नेडा दूरा नांहि
निरमल आभै सार सा सकल चराचर मांहि
सकल चराचर मांहि भरया है पूरण सांई
अषंड अघर अधीन षोज लो घट घट मांहो
कहै गुसांई लाल नहो जहां सुंन न लोई
नेडा दूरा नांहि अलष है यो ही यो ही ॥ ६ ॥

यो ही यो ही अलष है कहत वर्ण कुछ नांहि
सुंन सरोवर सार सा भरया सकल घट मांहि
भरया सकल घट मांहि अथग अनथाह न दरसे
वांणी पूगै नांहि सुरत कर साधु परसे
कहै गुसांई लाल सकल घट सो ही सो ही
वांणी पूगै नांहि अलष है यो ही यो ही ॥ ७ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उं हं उं हं अधर है धरणा गिगनी मांहि
अहं अहं यो भरचा हूं सोहं सब ठांहि
हूं सोहं सब ठांहि अथग जीणा अत भारी
थावर जंगम मांही नहीं कोई पुरषा नारी
कहै गुसांई लाल विचारं हंसा सोहं
सो पावै निज रूप हंस है उहं उ हं ॥ ८ ॥

ॐ कै ऊरघ सीस, धरा कै अधर बीच
इत उत नां ही होच समंद ज्यूं भरचौ है
निकट न नडो दूर वसूं दिसा भरपूर
असंप चंदर सूर अधरन धर्‌यो है
अखंड अनूप रुप नांही छाया नां (हि) धूप
वचन न वर्णं चूप, कैसं कहि वषांणीये
कहत है गुसांई लाल हम देख्यौ ऐसो ख्याल
चौडे चौक पड़ो माल गुरु मुष जांणीये ॥ ९ ॥

गरज नांहि वरमा अरु विसनऊ की गरज नांहि
गरज नां ही संभू ईस गिरजा गणेस की
गरज ना ही इन्द्र अरु कुमेर हूं की गरज नांही
गरज नाही धरमराय वरण अरु सेस की
गरज नांही राणा अरु राव हू की गरज नांही
गरज नांही दुनियां मीर सेष ऊ नरेस की
कहत है गुसांई लाल ग्रोर सिस्ट कोण माल
संत हू न राखै गरज मुक्त हूं सो देस की ॥ १० ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जतियां मुल्ला बांमणा हाट्यां मांडो तीन
वो वै री नेकी करै वैं में रैं लवलीन
वै में रैं लवलीन पांडिया वेद सुणावै
मुल्लो देवै बांग ढूंडिया वषाण गावै
कवै गुसांई लाल जगत की ऊंधी मतियां
हाट्यां मांडी तीन बामणां मुल्ला जतियां ।। ११ ।।

भोंदू पूजै भींत ने सात लीकटी मांड
आषा लावे ऊबळा घूमे ठगणी रांड
घूमै ठगणी रांड जगत ने जोर डरावै
म्हारो म्हारो करे रांड वा भोग भरावै
कवै गुसांई लाल जगत न ऊंधी सूजै
सात लीकटी मांड भींत नै भोंदू पूजै ।। १२ ।।

भैरूं भाठो पाण रो कारज कर सी धूड़
माळीपाना चिलकणा ढोळै तेल सिंदूर
ढोळै तेल सिन्दूर गीत कलाळो गावै
मदिरा री दे धार मांस रो भोग लगावै
कव गुसांई लाल, अकल रो आयो घाटो
कारज कर सी धूड़, पाण रो भैरूं भाठो ।। १३ ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पिंड उतपत पिंड परले रे अवधू, पिंड उतपत पिंड परले
फेर न आवणा इस नगरी में, सुकृत शब्दां करले रे अवधु ॥ आः ॥
अवगत प्रथम ब्रह्मांड प्रकाशा, उतपत तहाँ निवासा।
ज्यूं घट फूटा दरिया मांही, जल का जल में बासा रे ॥ १ ॥
द्वितीय पवन आकाश उपाणी, उतपत तहाँ समाणी।
जैसे चले वघूला गगन में, गांठ खुली मिल जाणी ॥ २ ॥
तृतिय तेज तत अनल उपाया, उतपत तहाँ समाणी।
ज्यों पावक के दाना माही, सेजा पवन मिलाणी ॥ ३ ॥
जल तत उत्पन हुआ अग्नि से, उलट मिल्या ता माही।
ज्यों वरतन भर धरा अगनि पर, सूख गया उन माही ॥ ४ ॥
पंचम जमी जमी जल मांही, उतपत तहाँ समाणी।
सो पाणी पृथ्वी में मिलकर भूमि एक नहीं पाणि ॥ ५ ॥
गगन आदि पृथ्वी मिल पांचो, पांचो पिंड उपाणी।
पिंड भया पांच का पिंडा, पिंड ब्रह्मांड समाणी ॥ ६ ॥
धरती मिली तोय के भीतर, तोय तेज के मांही।
तेज वायु मिल वायु गगन मिल, गगन मिल्या गम नांही ॥ ७ ॥
असंख जलमयी सास उसासा, रोक प्राण मन हर ले।
अवगत रूप तेरो तुझ मांही, जीवत मरणी मर ले ॥ ८ ॥
उतपत खोज आव घर कीन्हा, अलख अमर लग लीना।
कहत लाल गिर सुण रे पूता, कोई जाणे सन्त प्रवीना ॥ ९ ॥ ॥१४॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अवधू वड का बीज विस्तारा, कोई जाणे जाणन हारा ॥ आ ॥
आपो आप और नहि कोई, आपो आप पसारा रे अवधू ॥
भाई भया भतीजा मेरे, बाप भया घर वाला ।
दादा है घर पोता मेरे, सुसरा है घर साला ॥ १ ॥
भार्या है घर पुत्री मेरे, सासू भई लुगाई ।
भोजाई भतीजी मेरे, साढू साली जाई ॥ २ ॥
नाना है घर मामा मेरे, नानी मेरी माई ।
मामी मेरी मामा जाया, माता के घर बाई ॥ ३ ॥
बेटी मेरी ज्याई जाया, भूवा जाई दादी ।
काकी मेरी काका जाया, आगत आदि अनादि ॥ ४ ॥
मैं ही मात तात सुत भ्राता, मैं ही मेरा गोती ।
पुत्र वधू घर ऐसी जनमी, हुय गई मेरी पोती ॥ ५ ॥
मैं जग मांहि जगत मुझ मांही, मैं ही जगत से न्यारा ।
आपो आप में बैठा दीसे, आप उपावन हारा ॥ ६ ॥
वट में बीज बीज है बट में, ऐसा बट बहु झीणा ।
कहत लाल गिर सुण रे पूता, उपज हुआ सब लीणा ॥ ७ ॥ ॥१५॥
मैं मेरा घर चीन्हा रे अवधू, मैं मेरा घर चीन्हा रे ।
खोजत खोजत सतगुरु मिलिया, शब्द उजाला कीन्हा रे ॥
शबदे शब्द उजाला कीन्हा, उहा मेरा मन भीना रे ।
देख्या अगम गगन में गेबी, जहाँ अभै पद लीना रे ॥ १ ॥
जीवत मार्‍या मर्‍या उबार्‍या, आप पियाला पीन्हा रे ।
जार्‍या अजर बजर हुई बैठा, अखंड अमर लख लीन्हा रे ॥ २ ॥
धर नहीं दबे नीर नहीं डूबे, अग्नि नाह जलावे रे ।
वाय न उडे नभ न समावे, कह्यो न कोई पतियावे रे ॥ ३ ॥
ऐसा अलख अघर घर मेरा, जहां सब वास बसेरा रे ।
कहत लाल गिर सुण रे पूता, फेर नहीं भव फेरा रे ॥ ४ ॥ ॥१६॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करूं पुरुष से मेला रे, अवधू करूं पुरुष से मेला रे।
सुरत निरत मन पवना दृढ कर, कर्या चतुर्दश भेला रे ॥ आः ॥
सुन सा सहर गिगन सा किहला, जहां वो पुरुष अकेला रे।
गुरु गम संग चढूं ब्रह्मांडा, वहां जाय बांधू बेला रे ॥ १ ॥
बांध्या बेल मिल गया मेला, ना कोई एको दूजा रे।
भया प्रकाश निरन्तर मेला, नहि सेवक वा पूजा रे ॥ २ ॥
है सो नांही, नहि सो नांही, समझ समझ मुसकाई रे।
गूंगा कहै कोण के आगे, माया मिश्री खाई रे ॥ ३ ॥
ऐसा पुरुष अलख अविनासी, जासे ताली लागी रे।
कहत लाल गिर सुण रे पूता, मन की दुबध्या भागी रे ॥ ४ ॥ ॥१७॥

सुन्न में अलख लखाऊ रे अवधू, सुन्न में में अलख लखाऊ
सावधान गाफल नहीं रहणा, गूंगा होय बतलाऊ ॥ आः ॥
मुख बिन शब्द कान बिन सुणना, कर बिन ताल बजाऊ।
देखिने नेत्र बिन बास नाक बिन, पग बिन पंथ चलाऊ ॥ १ ॥
धरणि गगन विच हाथ हलाऊ, तामें सैंन कराऊ।
हुआ गरकाब उलट घर आऊ, हंसो हंस मिलाऊ ॥ २ ॥
बाहिर भीतर सुन्न हि सुन्नं, सुन्न भर्या इकसाऊ।
सुन्न सकल दिशि अगम अनादि, सुन्नहि सुन्न दिखाऊ ॥ ३ ॥
सुन्न साधन है निरांजनेसा, पार कोऊ नहि पाऊ।
कहत लाल गिर सुण रे पूता, आजा पार पठाऊ ॥ ४ ॥ ॥१८॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सहजा मुक्त बताऊँ रे अवधू, सहजा मुक्त बताऊँ रे।
पहली मोको तन मन सोंपे, पीछे फिर दिखलाऊँ रे ॥ आः ॥
सोहं हंसा सास हुसासा, करे चार चक मेला रे।
ऐसा जाप जपे निशि वासर, होय ब्रह्म सों मेला रे ॥ १ ॥
निकलंक देख निरन्तर बासा पेठत मध्य प्रकाशा रे।
थिर होय खोजी बाहिर भीतर, सो निर्माण निवासा रे ॥ २ ॥
जीवन मुक्त सन्त जन कहिये, मुवा मुगत संसारा रे।
एक हि जीव ब्रह्म हि एक हि, कोण वार कुण पारा रे ॥ ३ ॥
मैं ही मुकत मुक्त मुझ मांही, आद अन्त इक सारा रे।
कहत लाल थिर सुण रे पूता, मैं हूं अगम अपारा रे ॥ ४ ॥ ॥१९॥

:

गगन घुर्‌यो सहनांनि रे अवधू, गगन घुर्‌यो सहनानी।
उनमनि बाजा बजने बाजा, उमड्या इन्द्र मेवानी ॥ आः ॥
उमग्या इन्द्र गगन की घाटी, सो मेरे मन मानी।
हुये मतवाले पीकर प्याले, अरस परस कर जानी ॥ १ ॥
इन्द्र धनुष उत्तर दिसि तणिया, दक्षिण दिसि बीज चमकिया रे।
पूरब पवन पर बाई बाजे, पश्चिम धरा धमकिया रे ॥ २ ॥
जमना उलट गगन में फली, गंग जमन बिच फैली रे।
भया प्रयाग त्रिवेणी मेला, सुख सागर में भेली रे ॥ ३ ॥
भर्‌या सुन्न बिच सुख का सागर, हंस चुगे जहां मोती रे।
कहत लाल गिर सुण रे पूता, घट घट पूरण ज्योति रे ॥ ४ ॥ ॥२०॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लख में अलख पिछाण्या रे अवधु, लख में अखल पिछाणा रे
निराकार निरलेप निरंजन , निर्भय पद निरवाणा रे ॥ आ : ॥
अवगत गगन गगन भया वायु, वायु तेज उपाणा रे ।
तेज से जल बिब जल से धरणी, धर पर जगत बसाणा रे ॥ १ ॥
धर जल तेज पवन अरु अम्बर, पांचों पिंड उपाणा रे ।
पुरुष प्रकृति से भया प्रकाशा, पांचों पिंड खपाणा रे ॥ २ ॥
धर में अलख गगन में अलखहि, अलखहि तेज लखाणा रे ।
वन पाणि में आवहि अलखहि, अलखहि सकल समाणा रे ॥ ३ ॥
धरणि गगन बिच हम गम पाई, सतगुरु सेन प्रमाणा रे ।
कहत लाल गिर सुंण रे पूता, ना कोई आणा जाणा रे ॥ ४ ॥ ॥२१॥

मैं पाई मुकत निसांणी रे अवधु, गुरु मिल्या ब्रह्म ज्ञानी ।
निराकार निरलेप निरंजन, ऐसी अलख निसाणी रे ॥ आ : ॥
निराधार आधार विवर्जित, सब घट पूरण सांई रे ।
धरण गगन के मध्य निरन्तर, कह समझाऊं कांई रे ॥ १ ॥
रंग रूप वाके रेख न दरसे, अवगत झीणा अपारा रे ।
थाह न वाको अति ही ऊंडा, ना कोई पार न वारा रे ॥ २ ॥
ना दरियाव पाल नहिं नीर न, कोई न तरंग समीरा रे ।
ना कोई भर्या न खाली दरसे, ना कोई मध्यम तीरा रे ॥ ३ ॥
अगम अतीत अगोचर मारग, ना कोई निकट न दूरा रे ।
कहत लाल गिर सुण रे पूता, अखंड अमर भरपूरा रे ॥ ४ ॥ ॥२२॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है सो मांही नांहि रे अवधू, है सो नांही नांही रे।
नांही है के मध्य निरन्तर, अकल अमूरत सांई रे ॥ आ: ॥
धर जल तेज पवन नहीं पाणी, नांही पिंड ब्रह्मांडा रे।
चन्द्र सूर नक्षत्र जहं वां, नांही द्वीप नव खंडा रे ॥ १ ॥
नांही नांही में ही मांही, तूं दीखे सो नांही रे।
अगम अतील अगोचर मारग, कहि समझाऊँ कांई रे ॥ २ ॥
नांही नांही कह्यो ना जाई, है है क्यो न बांही रे।
अलख दरियाव भर्‌या नहीं खाली मैं वहाँ आपू कांई रे ॥ ३ ॥
अभेद अखेद-अछेद अडोला, वचन कहूं कहा ताई रे।
कहत लालगिर सुण रे पूता, समझ भूल कछु नांही रे ॥ ४ ॥ ॥२३॥

जमराजा से हाऊ रे संतो, जमराजा से हाऊ।
झूंठे विप्र डरावत जग को, वाल डरावत माऊ ॥ आ: ॥
ज्यों शुशिये शिर श्रृंग कहीजे, यह न शास्त्र अनुकूला।
ज्यों जमराज मिथ्या जग मांही, भ्रम करि दुनियां भूला ॥ १ ॥
ज्यों वन्ध्याधर पुत्र कहीजे, ज्यों मृग तृष्णा भूला।
ओस बूंद मोती जग मिथ्या, मिथ्या भूत वघूला ॥ २ ॥
गन्धप नगर सीसगढ किल्ला, को कुण वास बसाणा।
ऊगा सूर तेज जब प्रगटा, देखत दृष्टि विलाणा ॥ ३ ॥
ना कोई सरग नरक नहि जाणा, ना कोई जूंण चौरासी।
ना धर्मराज न जम की बेड़ी, नहीं काल नहिं फांसी ॥ ४ ॥
धरती मिली तोय के अन्दर, तोय तेज के मांही।
तेज वायु मिल वायु गगन मिलि, गगन मिल्या गम नाहीं ॥ ५ ॥
ज्यों दरियाव लहर उपानी, नीर लहर बिन नांही।
ज्यों जग बण्या अलख के भीतर, उलट मिल्या ता मांही ॥ ६ ॥
जीवन ब्रह्म जगत नहिं माया, रंग रूप नहिं काया।
नभ के बीच निरंतर भरिया, सोहं सहजा पाया ॥ ७ ॥
अविगत अलख अमर अविनासी, लालगिरि लख पाया।
सतगुरु शरण भरम भव भागा, फेर न दूजे आया ॥ ८ ॥ ॥२४॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सन्तो लो रे हरी को नामा ।
रोकारोक उधार न करहू; सिर सट सूंगा दामा ॥
सोहं हंसा सासो सासा, जपे जाप निज नामा ॥
ऐसा विराज करे कोई मोसे, ताही करों निकामा ॥१॥
ब्रह्म माल अपार भवन में, भरचा अथाह अदोई ।
तोल न मोल माप नहि वां का,लोरे यज्ञा सी कोई ॥२॥
निराकार आकार विवर्जित, घट-घट पूरण सांई ।
जो कोई मोको तन मन सौंपे, ताहि दिखाऊ माई ॥३॥
ऐसा रतन अमोल पदारथ, ले लो सनमुख आई ।
स्वयं प्रकाश महा सुन भीतर, शोभा बरणि न जाई ॥४॥
धरणि गगन बिच हाट मंडाणी, वणिजे लाल गुसांई ।
मैं मेरे शिर साटे लीना, पडस तरुपद छांई ॥५॥ ॥२५॥

हमारे अलख लखो मेरा भाई, आवो संगत के माई ।
निरमल आभा जिसा निरंजन, नहि धूप नहि छांई ॥आ०॥
ना कोई देव न देवी दरसे, ना कोई सेव न पूजा ।
ना कोई जगत ब्रह्म इक माया, ना कोई एक न दूजा ॥१॥
दूर कहूं तो नेड़ा दरसे, निकट कहूं तो दूरा ।
निकट न दूर दूर नहि नेड़ा, अकल सकल भरपूरा ॥२॥
ना कोई गांव नाम नहि पेंढा, ना कोई धरणि अकाशा ।
अर्ध उर्ध्व के अधर बिम्ब में, अवगत अखंड प्रकाशा ॥३॥
मन बुध चित्त चसमा नहि दरसे, श्रुति चारों मिल गाई ।
कहत लालगिर सुण रे पूता, सतगुरु सेन लखाई ॥४॥ ॥२६॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हंसा रे अलख अमर पद झीणा, जामें सन्त हुआ सब लीना ।
तूं तेरे घट बीच निरखले, सतगुरु सैन प्रवीना ।।आ:।।
निराकार निरलेप निरंजन, अवगत अगम अनूपा ।
राती न दिवस सूर शशि नांही, नांही छांह न धूपा ।।१।।
श्वेत न श्याम रक्त नहीं पीता, ना कोई भेला न्यारा ।
रंग रूप कछु रेख न दरसे, अनभव दृष्ट अपारा ।।२।।
ना कोई नारि पुरुष पशु देवा, ना कोई शब्द न वेदा ।
विधि निषेध न ना कोई दरसे, ना कोई छेद न भेदा ।।३।।
अखंड अधर घर बीच निरन्तर, निश्चल पद निरवाणा ।
कहत लाल गिर सुण रे पूत , सोहं सत्य प्रमाणा ।।४।। ।।२७।।

तू है मुझ में मैं हूं तुझ में, सुण सरवण निज वाणी ।
जाग्रत स्वप्न सुखोपति तुरिया, सब में एक समाणी ।।आ:।।
तू पांचों नाहि पचीसों नाही, नवदश है तूं नाही ।
तीनों नाहि तीन से न्यारा, तू तू मैं मैं मांही ।।१।।
तू आदे नाही अन्ते नाही, मध्ये नाही नाही ।
तन छोड्या तब अलख ठिकाना, सो व्यापक सब ठाही ।।२।।
तू नहि छोटा मोटा नाही, लम्बा चवड़ा नाही ।
सिष्ट न विष्ट गुष्ट से न्यारा, नूर निरन्तर झाही ।।३।।
अपरंपार अलख अति झीणा, कहता लाल गुसांई ।
झीणे से झीणा सुख सागर, मैं तूं लहरी मांही ।।४।। ।।२८।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अलख घर खोज गिगन घर माही, भंवर भवन बिच सोध ।
कुण घर उतपत सास उसासा, कुण घर प्रलय सोघ ।
कुण घर हंसा है निर संसा, कुण घर मन परमोघ ॥१॥
नाभी उतपत सासो सासा, सुन घर प्रलय सोध ।
घन घर हंसा मेरे संसा, शिव घर मन परमोघ ॥२॥
कुण चालत कुण बोलत माही, कोण सुणत श्रुति वेण ।
कोण नाशिका लेत वासना, कोन निरखता नेण ॥३॥
चेतन चालत बोलत माही, सोहि सुणत श्रुति वेण ।
सोहि लेत सुगन्ध वासना, सो हि निरखत नेण ॥४॥
कुण घर अलख कोण सा मारग, कोण गगन घर लेख ।
कहत जीव मैं किस विधि निरखूं, रंग रूप नहि रेख ॥५॥
घन घर अलख बिख ध्रुव मारग, अगम गगन घर पेख ।
कहत लाल थिर सुण रे पूता, अर्ध उर्ध गें देख ॥६॥ ॥२६॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वाणी के शब्दार्थ

१—साहिब=ईश्वर। सुंन=दसवांद्वार (ब्रह्माण्ड)। रूंम रूंम=रोम रोम । पिछांण=पहचान। सोइ=वही । जिन=जिसको । भेट्या=भेंट हुई । पांचू गायब= काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह को लुप्त कर दिया।

२—सोई=वही। सोहं=शिवोहं, ब्रह्म। हंसा=जीवात्मा । सोय=वही। नह=नहीं। अच्छर=अक्षर, ब्रह्म। ता=उसके । ऊपरं=ऊपर में। जोय=देख।

३—अलष=अलक्ष्य, ब्रह्म। धरा=पृथ्वी। गिगन=गगन, आकाश। स्वेत फटिक=श्वेत स्फटिक मणि जैसा। सार=सर्वत्र। एकोदोई=एक ओर दो, द्वैतभाव। परतीत=प्रतीति, विश्वास।

४—नैडा=पास । भेला=इकट्ठा । घणा=बहुत । आद [आदि]= आरंभ, शुरू। मध [मध्य]=बीच ।

५—पूगे=पहुँचे। दुरमत=बुरी बुद्धि, अज्ञान।

६—आभै=आकाश । सार सा=समान।

७—सार सा=जैसा। अथग=अथाह। अनथाह=असीम, जिसकी थाह नहीं ली जा सकती। सुरत=सुरति, वह वृत्ति जिससे ब्रह्मानुभूति की जाती है । परस=स्पर्श करे।

८—थावर=स्थावर।

९—ऊरध=उर्ध्वं। अधर=बिना आधार। नैडो=पास, नजदीक। असंष=असंख्य। चंदर=चन्द्रमा। सूर=सूर्य। चूप=चुप। चौड़ेचौक=मैदान में ।

१०—बरमा=ब्रह्मा। विसनऊ=विष्णु। सिस्ट=श्रेष्ठ। हूं सैं=जैसे।

११—जतियां=जैन यति। हाट्यां=दुकानदारी। मांडी=लगाई, मंडन की। व री=उसकी। वे में=उसमें । रै=रहता है । ढूंढिया= जैनसाधु जो "बाईस टोळा" कहलाते हैं। ऊंधी=उल्टी, विपरीत । मतियां=बुद्धियां-बुद्धि का बहुवचन ।

१२—मौंदू = मूर्ख, गंवार । पूजै=पूजता है । भींत = दीवार । नै=को । लीकटी = लकीर, रेखा । मांड=मंडन कर, लिखकर। आखा=वह अन्नभोग जो भैरव आदि देवों के चढाया जाता है या वह अन्न जो इच्छित प्रश्न को पूछने के लिए भैरव, बायांजी आदि देवों की पुजारिन के सामने रखा जाता है—वह अन्न कण जो देवता के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जागरण या 'रातीजगे' में आमन्त्रण रूप में किसी को दिया जाता हैं। यहां "आखा" का आशय प्रश्न पूछने से है। ऊजळा=उज्ज्वल, लक्ष्यार्थ किसी उत्तम अन्न से है जैसे-चावल, गेहूँ आदि। घूमैं=घूमती है, आखा सामने रखने पर उक्त देवों की पुजारिनें माथे को हिलाकर अपने में देव-प्रवेश का प्रदर्शन करती हैं। रांड=रोषपूर्ण गाली, यहां 'रांड' उस पांखड करने वाली स्त्री का विशेषण है। जोर=भली प्रकार से। म्हारो म्हारो=मेरा है मेरा है-अर्थात् जिसके सम्बंध में प्रश्न पूछा जाता है उस पर मेरे अनिष्ट की छाया है, ऐसा कह कर वह भोली-भाली औरतों से प्रसाद चढ़वाती हैं।

१३—भाठो=पत्थर। खाण रो = खान का। करसी=करेगा। धूड़=रेत, मिट्टी। माळीपाना=रांग के वर्ग जो सिन्दूर के साथ देवमूर्तियों पर चिपकाये जाते है जिन्हें कहीं 'सिंदूर पाना' भी कहते हैं। ढोळै=डाले। कलाळी=एक गीत विशेष जिसमें शराब की प्रशंसा का वर्णन है। घाटो=कमी।

१४—पिंड=शरीर। उपाणी=पैदा की। समाणी=समाजाना। वघूला=वायु की गांठ, बगुला, भतूलिया, वात्या-चक। उव=उसमें। पिंडा=पिंड, शरीर। मरणी=मरने का भाव। कीन्हा=किया।

१५—बड=वटवृक्ष। पसारा=प्रसार, फैलाव। लुगाई=स्त्री। भोजाई=भाभी। साढू=साली का पति। काकी=चाची। काका=चाचा। दीसे=दीखे, दिखाई पड़ना। झीणा=सूक्ष्म। लीणा=लीन, विलीन।

१६—चीन्हा=देखा जाना, समझना। उवास्या=बचाया, रक्षा की। वजर=वज्र, मजबूत। पतियावे=प्रतीति करे। फेरा=पुनरागमन।

१७—भेला=साथ, शामिल। ताली=मिलन (चाबी ?) दुबध्या=द्विधा।

१८—गरकाब=लवलीन। इकसाइ=एकजैसा, समानान्तर। पठाऊ=भेजूं, भेजने वाला।

१९—मोको=मुझे। हुसासा=उच्छवास। खोजी=पता लगाने वाला। वार=इस ओर। पारा=उस ओर।

२०—घुर्‌यो=बजा। सहनांनि=निशान, वाद्य। उनमनि=उपरामता, उनमुनि मुद्रा। उमर्‌या=उमंगित हुआ। तणिया=तना। दिसि=दिशा। बीज=बिजली। धरा=धरती।

२१—लख=पहचान। पिछाण्या=पहचाना। उपाणा=उत्पन्न होना, उत्पन्न करना।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बसाणा=आबाद करना। खपाणा=खपाना,समाहित करना। लखाणा=जनाना,जानना। आणा जाणा=आगमन-प्रत्यागमन।

२२—वाके=उनके। दरसे=दिखाई देना। ऊंडा=गहरा। पाल=तालाब के चारों ओर की मिट्टी की परिधि।

२३—वणे=बनता, कहा नहीं जाता।

२४—माऊ = माता। शुशिये = खरगोश। गन्ध्रप ··· ··· सीतगढ़ = शीत-कोट, अतिशय शीत गिरने पर शीत के बादल किलानुमा दिखाई पड़ते हैं। को=कहो। कुण=कौन। ऊगा=उदय हुआ। बिलाणा=विलीन होना। सरगा=स्वर्ग। जूंण=जीवयोनि। बेड़ी=बन्धन। उपानी=उत्पन्न होती। वण्या=बना। दूजे=पुनः।

२५—लो=लेओ। सूंगा=सस्ता। सासो सासा=स्वाँस-प्रतिस्वाँस। मो से=मेरे से। माल=माल-असबाब। अदोई=अद्वैत (?)। वाँका=उसका। मंडाणी=लगाई है, सजाई है। साटे=बदले में। लीणा=लीया। पडस=रास्ते से (?)

२६—नेड़ा=नजदीक। पेंडा=मार्ग।

२७—लीना=लीन। निरखले=निरीक्षण करले, देखले। रात्ती—रात्रि। पीवा=पीत, पीला। भेला=साथ, संयुक्त। न्यारा=अलग, पृथक्। अनुभव=ज्ञान।

२८—मोटा=स्थूल। चवडा=चौड़ा, विस्तृत। सिष्ट=सृष्टि। दिष्ट=दिखने वाला। गुष्ट=गोष्ठ,मंत्रणा। नूर=ज्योति, प्रकाश। झीणे से झीणा=सूक्ष्मातिसूक्ष्म।

२९—खोध = शोध, खोज। निरसंसा=निसंशय। परमोध = प्रमोद, संतोष। चालत=चलता है। विख=विषम। पेख=देख।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिशिष्ट

अलखसागर कुए का शिलालेख

श्री अलष अलष अलष

(१) अभीप्सितार्थं सिध्यर्थं पूजितोयः सुरा सुरैः सर्व विघ्न
(२) छिदे तस्मै गणाधिपतये नमः ।।१।। यं ब्रह्मवेदांत विदो
(३) वदंति परं प्रधानं पुरुषं तथान्ये विश्वोदग्तेकारण मी
(४) स्वर वा तस्मै नमो विघ्न विनाशनाय ।।२।। संव्वत् १६०१
(५) मिती पोहो शुदि ४ नै गुसांईजी म्हाराज श्री लालगिरजी
(६) श्री हजूर में अरज कराई म्हे कुवो करासां सो हजूर
(७) जमीरी दुवायती दें जठै करावां जद हजूर सूं फुरमा
(८) ई कठै करावणरी मर जी छै मरजी तो कैरटै कनै कराव
(९) ण रो छै जद फुरमाई गुसांईजी री मरजी हुवै जठै करावौ
(१०) जद गुसांई जी माहाराज सुं संव्वत् १६०१ मिती पोह शुदि
(११) १४ अलख मठ मैं अरज हुई जद फुरमाई माघ वदि ८ नै
(१२) अलख सागर रो पावो दोपारैं पुगो जीकी वषत जो हा
(१३) थ में हाजर हुवै जैं सुं पावो मार दे जो तिको तिको सरब काम चूक
(१४) ती संव्वत् १६२२ साल त्यार हुवो यावत् गंगादयो नद्यः यावत चं
(१५) द्र दिवाकरौ यावत् हिमाचलो भूमौ तावत् कुपोत्र तिष्टतु शुभं भवतु ।।
(१६)।।कुवैरी मरजाद गुसांई जी म्हाराज फुरमाई छै इये मुजब रा
(१७) षणी पुनरथ मैं तो अभ्यागत वा गोधा पीसी और मारगु क
(१८) तारियो गाडो वालो दैड़ी वा छींके रो घडियो भरसी तैनै न पा
(१९) लसी और सिनानी चावै जिको करो वरजण नहीं ओर दूजा
(२०) सरब पांणी दांम देय पीसी दरबारी वेगार न लागसी कूवैरै

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(२१) चौफेर बरत फिरै जिती दूर में आसराम न हुव कूवो नित

(२२) वैंहैतो रै बारुमहीना कूवैरी मिटी सालरो साल कढा

(२३) य नांखणो इये मुजब गुसांई जी माहाराज फुरमायो छै

(२४)।।संवत् १९२४ प्रवर्त माने महा मंगल प्रदे माघ मासे शुभे शुक्ले पक्षे तृतीया यं

(२५) सोम वासरे शतभिषा नक्षत्रे वरीयान योगे तैंतल कर्णे एवं पंचांग

(२६) शुधौ: मध्यान समये सर्व स्थावर जंगम जीव तृप्ति करणार्थं परो

(२७) पकारार्थं जलोत्सर्गः कृतः सोयं अमृत जलमयः कूपः स चिरं तिष्टतु

नोट :— मकराणे का चौरस स्तम्भ लाल प्रस्तर के चौंतरे पर कूए से पूर्वोत्तर कोणमें स्थापित है, इस में पूर्व की ओर सूर्य, दक्षिण में गणेश पश्चिम में चंद्र और उत्तर की तरफ सर्प सहित शिव अंकित है। लेख पूर्व की ओर देवनागरी में है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

प्रकाशित ग्रन्थ

- गोगाजी चौहान री राजस्थानी गाथा
  श्री चन्द्रदान चारण एम.ए., साहित्यरत्न
- रासो साहित्य और पृथ्वीराज रासो
  श्री नरोत्तमदास स्वामी एम. ए.
- अमिय हलाहल मद भरे
  श्री श्रीगोपाल गोस्वामी
- प्राचीन काव्यों की रूप परम्परा
  श्री अगरचन्द नाहटा
- अलखिया सम्प्रदाय
  श्री चन्द्रदान चारण एम. ए., साहित्यरत्न

आगामी प्रकाशन

- जांभाजी री वाणी
  श्री सूर्यशंकर पारीक
- नागदमण
  श्री मूलचन्द 'प्राणेश' साहित्यरत्न
- संत परिचयी
  श्री श्रीगोपाल गोस्वामी
- प्राचीन ऐतिहासिक वातां—भाग १
  श्री नरोत्तमदास स्वामी एम. ए.
- श्री करनी चरित्र
  श्री चन्द्रदान चारण एम. ए., साहित्यरत्न
- रणमल्ल छन्द
  श्री मूलचन्द 'प्राणेश' साहित्यरत्न
- राजस्थानी वातां
  श्री नरोत्तमदास स्वामी एम. ए.

भारतीय विद्या मन्दिर शोध प्रतिष्ठान
बीकानेर (राजस्थान)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh